सीताराम * * सीताराम * * सीताराम

श्रीमिथिली रमणो विजयते

* श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः *

* श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः *

श्रीसीताराम-तत्त्व-प्रकाश

नाम-रूप-लीला-धामात्मक

पूर्वार्ध

संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक
'सीताशरण'

सीताराम * * सीताराम * * सीताराम

❀ ॐ गं गुरवे नमः ❀

❀ श्रीमैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ❀

❀ श्रीमतेभगवते जगतगुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

* श्रीसीताराम-तत्त्वप्रकाश *

नाम, रूप, लीला, धामात्मक-पूर्वार्द्ध

संग्रहकर्ता लेखक एवं प्रकाशकः-

अनन्त श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्य वंशावतंश

अनन्त श्रीजानकीशरणजी महाराज "मधुकर"

तच्चरणारविन्द भ्रमर

सीताशरण

श्रीचारुशीला मन्दिर, श्रीचारुशीला बाग, श्रीजानकीघाट,

श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण १०२५ प्रति	माघकृष्ण सप्तमी श्रीरामानन्द जयन्ती सं० २०३२ वि० सन् १९७६ ई०	न्यौछावर १५) रु०

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी।

सम्प्रदायानुकुल भाष्य किया है। ब्रह्मसूत्र (न्याय प्रस्थान) उपनिषद् (श्रुति प्रस्थान) और गीता (स्मृति स्थान) यही तीन ग्रंथ प्रस्थान त्रयी के नाम से विख्यात हैं। इन सब पर भाष्य करके तथा उसका समुचित प्रचार प्रसार करके ही सम्प्रदाय चले हैं। आज जैसे सम्प्रदाय पहिले भारत में नहीं चल सकते थे। अद्वैतवाद के अतिरिक्त समस्त वैष्णव दर्शन में उपासना की पुष्टि की गयी है अतः इनमें जगत् की सत्यता, तथा ब्रह्म के विशेष रूपका प्रतिपादन हैं। भाष्यरूप दर्शनों में मौलिक कोई भेद नहींहै। आचार्यों ने अधिकारी भेद से साधनों की पुष्टि के लिये ही भाष्यों का विस्तार किया है। अद्वैतवाद में 'ज्ञानयोग' वैष्णवदर्शन में 'उपासना' साधन के रूप में प्रतिपादित है। प्रत्येक सम्प्रदाय अपनी अनादि परम्परा मानता है। आद्याचार्य प्रस्थान त्रयी पर भाष्य करके प्रचार करने वाले महापुरुष को कहते हैं। उन्होंने सिद्धान्त को बनाया यह न तो आचार्य ही मानते हैं और न उनके अनुयायी ही मानते है। सत्य के अनेक भेद नहीं है वाणी द्वारा व्यक्त करते समय दृष्टि भेद से वह विविध रूपों को धारणकर लेता है। अचिन्त्य रूपा मायाशक्ति, अवाङ् मनस गोचर परम तत्त्व, यह सब कोई मानता है। इनकी उपलब्धि तथा अनुभूति के मार्ग भिन्न भिन्न हैं अधिकार भेद से पुराणों में जैसे परतत्त्व कहीं शिव, कहीं शक्ति, कहीं विष्णु हैं। उसी प्रकार आचार्यों के सिद्धान्त का भेद अधिकारी के भेद का ही द्योतक है। वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है।

अद्वैतवाद :— जिस समय बौद्धधर्म के प्रचार प्रसार ने वामतंत्र की साधनाओं को अपना लिया था। दर्शन जड़वादी बन चुका था। साधनायें अनाचार दुराचार पापाचार का रूप धारण करली थीं। वैभाषिक बौद्धदर्शन का आधार जड़ को ही सत्य मानता था। इसी वातावरण में भगवान् शंकर शंकराचार्य के रूप में अवतीर्ण हुये। बौद्धदर्शन जिसे सत्य मानता था उसके विरुद्ध "यह मिथ्या है' 'प्रतीति मात्र है" "पारमार्थिक असत्य है" यह प्रतिक्रिया उत्थित की गयी। अतः बौद्धदर्शन से इस दर्शन का भेद केवल इतना ही रहा कि श्रुति, शास्त्र एवं आस्तिकता की प्रतिष्ठा के साथ आचार की अपेक्षा ज्ञान को महत्ता दी गई। उस समय उच्छृङ्खलतायें जो आचार के नाम पर समाज में पनप रहीं थी उनका समूलोन्मूलन इसी वाद द्वारा किया गया। अतः इस दर्शन में दृश्य जगत् को केवल प्रतीति मात्र माना गया। इस प्रतीति का कारण अज्ञान है, अज्ञान भाव रूप है। निर्गुण, निराकार, निर्विकार, निर्विशेष एक ही चेतन सत्ता है। प्रतीयमान यह जगत् उससे भिन्न नहीं है ब्रह्मसत्ता में ही अध्यस्त है। दृश्य जगत् परिणामी और अनित्य है। सबका द्रष्टा एक है ज्ञेय भी ज्ञाता का सोपाधिक रूप है। जगत् नाम रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। नाम रूप की प्रतीति माया से है। माया अनिर्वचनीय है। अनादि होते हुए भी ज्ञान के द्वारा उसका अंत होता है अतः उसकी सत्ता नहीं है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है वह सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद शून्य है। जगत् की

प्रतीति रस्सी में सर्प के समान भ्रम द्वारा होती है, यही विवर्तवाद है (अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा)। इस दर्शन में अजातवाद, दृष्टि सृष्टिवाद, जगत् की प्रतीति लेकर ही टिके हैं बौद्ध दर्शन की तर्कों का भी प्रकारान्तर से प्रयोग किया गया है।

इस दर्शन में ज्ञान, चैतन्य, ब्रह्म पर्याय हैं अतः प्रत्यक्ष प्रमा चैतन्य ही है प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि ये ही छः प्रमाण हैं। प्रमाण चैतन्य का विषयावच्छिन्न चैतन्य से अभेद होना ही प्रत्यक्ष है। घटाद्यवच्छिन्न चैतन्य को विषयावच्छिन्न चैतन्य कहते हैं। अन्तःकरण वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य को प्रमाण चैतन्य तथा अन्तःकरणावच्छिन्न, चैतन्य को प्रमातृचैतन्य कहते हैं। तीनों चैतन्यों का एकदेशस्थ होना ही ज्ञानगत प्रत्यक्ष का प्रयोजक है। जैसे तालाब का पानी नाली द्वारा खेत में जाकर क्षेत्र के आकार से परिणत हो जाता है उसी प्रकार तैजस अन्तःकरण चक्षुरादि द्वारा निकलकर विषय देश में जाकर घटादि विषयाकार रूप से परिणत हो जाता है, इसी परिणाम को वृत्ति कहते हैं। विषयावच्छिन्न चैतन्य, अन्तःकरण वृत्त्यव-च्छिन्न चैतन्य का जहाँ अभेद होता है वहीं अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ने पर प्रत्यक्ष हो जाता है। जैसे अपरिच्छिन्न आकाश का घटशरावादि द्वारा परिच्छेद होता है उसी प्रकार अनवच्छिन्न चैतन्य का प्रमातृ-प्रमाण, प्रमेय द्वारा परिच्छेद होता है। जगत् के समस्त पदार्थ इन्हीं तीनों में अन्तर्भूत हैं। वस्तुतः चैतन्य आकाशवद् एक ही है अतः अद्वैत श्रुति से विरोध नहीं होता। जीव ब्रह्म का ऐक्य प्रमेय है वह "तत्त्व-मसि" इत्यादि महावाक्य द्वारा ही सम्भव है। घटादिसत्ता व्यावहारिकी, रज्जु में सर्प प्रातिभासिक तथा ब्रह्म की सत्ता परमार्थिक है। सच्चिदानन्द अर्थात् "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" यह ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है, जगज्जन्मादि कारणत्व तटस्थ लक्षण है। शुद्ध चैतन्य ब्रह्म ही समष्टि रूप से माया अविद्या संवलित होकर ईश्वर, हिरण्यगर्भ, वैश्वानर संज्ञा को प्राप्त करता है, और वही व्यष्ट्यवच्छिन्न होकर प्राज्ञ, तैजस, विश्व नाम से प्रसिद्ध हुआ है ये परस्पर तीनों अभिन्न हैं केवल औपाधिक भेद हैं और इन तीनों का शुद्ध चैतन्य से भी अभेद हैं। अन्त: "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" यह श्रुति चरितार्थ हुई। पञ्च प्राण, मन, बुद्धि, दश इन्द्रिय से समन्वित सत्रह तत्त्व का लिंग शरीर अपञ्चीकृत भूत से उत्पन्न हुआ माना जाता है। यह सूक्ष्म शरीर, हिरण्यगर्भ का पर तथा हम लोगों का अपर, है। हिरण्यगर्भ का महत्त्व का है और हम लोगों का अहंकार का है। तमोगुण युक्त पञ्चीकृतभूत से भूलोकादि सात ऊपर के, अतलवितलादि सात नीचे के तथा जरायु-आदि चार प्रकार के स्थूल शरीर एवं इनके उपयुक्त अन्नपानादि उत्पन्न हुये हैं। सात्त्विक सूक्ष्मतन्मात्राओं के व्यस्त से पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मिलित से अन्तःकरण चतुष्टय उत्पन्न हुआ है। राजस पञ्चतन्मात्राओं के व्यस्त से पञ्चकर्मेन्द्रिय, मिलित से पञ्चप्राणों की उत्पत्ति है। भगवान् शंकराचार्य ने "ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैत वासनाः" कहकर ईश्वर

की कृपा अपेक्षित मानी है। उपासना, भक्ति तथा आचार को महत्त्व दिया है। संसार कल्पना है पर समष्टि के संचालक की। जीव की कल्पना अहं और मम है। अहं मम को छोड़ना जीव के वश की बात है और समष्टि का लय समष्टि कर्ता के आधीन है अतः ईश्वर कृपा सापेक्ष मोक्ष है। जब पारमार्थिक सत्य किसी प्रतीति का साक्षात्कार कर लेगा, व्यावहारिक बन्धन उसके नहीं रह जायेंगे अतः मोक्ष हो जायेगा।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त :—इस सिद्धान्त के आदि प्रवर्तक वृत्तिकार भगवान् बोधायन श्री पुरुषोत्तमाचार्य, श्रीशुकदेव जी महाराज के अव्यवहित शिष्य हैं। वृत्ति ग्रन्थ का श्रीरामनुजाचार्य जी ने अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य श्रीभाष्य में स्मरण किया है। उनके समय वह वृत्ति ग्रन्थ था आज वह ग्रंथ अनुपलब्ध है। अतः इस सम्प्रदाय के आचार्यद्वय श्रीरामानुजाचार्य एवं श्रीरामानन्दाचार्य हैं। अद्वैतवेदान्त में श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि द्वारा अपरोक्षानुभूति कही गई है। आचार से ज्ञान को श्रेष्ठ कहा है। इन्द्रियों द्वारा विषय सेवन व्यवहार माना गया। जीव, नित्यमुक्त शुद्ध ब्रह्म है उसे कोई आचार बाधित नहीं कर सकता। विषय भोगादि कल्पना है अज्ञान की प्रतीति मात्र है, सदाचार उपासनादि भी व्यावहारिक हैं। अतः आचार की प्रतिष्ठा के लिये यह विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त प्रवृत्त हुआ। इस दर्शन में चिद् जीव भोक्ता है, अचिद् जगत भोग्य भोगोपकरण, भोगायतन है, और इन दोनों का नियामक ईश्वर है। अतः नित्य, भिन्न ये तीन ही पदार्थ हैं। चिद् अचिद् ब्रह्म के विशेषण हैं, चिद चिद् विशिष्ट ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है चिद चिद् दोनों ही ईश्वर के शरीर हैं ईश्वर शरीरी है। चिद चिद् विशिष्ट ब्रह्म होने से ही इसे विशिष्टाद्वैत कहते हैं। चिद् शब्द वाच्य जीव ईश्वर से सदा भिन्न रहता है। कार्य कारण रूप से परिणत होने वाला अचित्-तत्त्व विकारी है। कारणावस्थापन्न सूक्ष्म चिद-चिद् विशिष्ट का स्थूल चिद-चिद् विशिष्ट से अभेद है। ब्रह्म के ही चेतन अंश को चिद् जीव और अचित जड़ को प्रकृति कहते हैं जीव ब्रह्म का ही अंश है, धार्य है, नियाम्य है। ब्रह्म अंशी (शेषी) धारक एवं नियामक है। भगवान् ही समस्त जड़ चेतन सत्ता के स्वामी हैं निरस्त निखिल दोष, अनवधिकातिशत असंख्येय कल्याण गुणगुणनिलय ब्रह्म ही "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" वे० सू० १।१ का जिज्ञास्य विषय है। इस सूत्र में अथ शब्द आनन्तर्य अर्थ में प्रयुक्त है, अतः शब्द वृत्त के हेतु को कहता है। जिसने साङ्गसशिरस्क वेद का अध्ययन किया है उसको ही धर्म और ब्रह्म के विचार का अधिकार है। पूर्वमीमांसा में कर्म का फल अल्प, अस्थिर है। इसके अन्तर ही स्थिर और अनन्त फल वाले ब्रह्म को जिज्ञासा होती है। बृहत्त्व गुणयोगी होने से ब्रह्म सगुण तथा साकार ही है, इसी में श्रुति स्मृति का समन्वय किया गया है। इस मत में जीव, ईश्वर, प्रकृति तीनों तत्त्व सत्य तथा अनादि हैं। संसार के सभी पदार्थ सत्य हैं। शुक्ति में रजतज्ञान भी कारण सत्तातया सत्य है मिथ्या ज्ञान

होता ही नहीं है। ये तीनों तत्त्व सम्बन्धित होते हुये भी परस्पर भिन्न हैं। परमात्मा सजातीय-विजातीय स्वगत भेद सहित है। भेद होने पर भी शरीर विशिष्ट के एक होने के कारण यह विशिष्टाद्वैतवाद है।

जीव ज्ञाता है। ज्ञान जीव का धर्म है, वह ज्ञान स्वरूप नहीं है। यथावस्थित व्यवहारानुगुण ज्ञान को ही प्रमा कहते हैं। निर्विकल्पक, सविकल्पक ज्ञान विशेषतायुक्त पदार्थ के ही होते हैं। जिसमें कोई विशेषता न हो उसका ज्ञान नहीं होता। आत्मा का मन से, मन का इन्द्रिय से, इन्द्रिय का विषय से संयोग होने पर ही प्रत्यक्ष होता है। इस मत में परिणामवाद ही माना गया है। उपासना द्वारा अज्ञान की निवृत्ति जीव का प्रयोजन है। ब्रह्म योगमाया शक्ति से समन्वित होकर कर्म फलदाता, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी हैं। यह ब्रह्म पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चावतार भेद से पांच प्रकार का माना गया है। प्रमाण यथा—

वासुदेवः स्वभक्तेषु वात्सल्यात्तत्तदीहितम्। अधिकार्यानुगुण्येन प्रयच्छति फलं बहु ॥ १ ॥ तदर्थं लीलया स्वीयाः पञ्चमूर्तीः करोति वै। प्रतिमादिकमर्चा स्यादवतारास्तु वैभवाः ॥ २ ॥ संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः। व्यूहश्चतुर्विधो ज्ञेयः सूक्ष्मं सम्पूर्णषड्गुणम् ॥३॥ तदेव वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म निगद्यते। अन्तर्यामी जीव संस्थो जीव प्रेरक ईरितः ॥ ४ ॥ य आत्मनीति वेदान्त वाक्यजालैर्निरूपितः। अर्चोपासनया क्षिप्ते कल्मषेधिकृतो भवेत् ॥ ५ ॥ विभवोपासने पश्चाद् व्यूहोपास्तौ ततः परम्। सूक्ष्मे तदनुशक्तः स्यादन्तर्यामिणमीक्षितुम् ॥६॥

भगवान के अवतार कर्म के कारण नहीं होते वे स्वेच्छा से ही अवतार ग्रहण करते हैं। जीव-देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, ज्ञान से भिन्न स्वयं प्रकाश ज्ञानाश्रय, कर्ता, भोक्ता ब्रह्म का शरीर तथा दास है। जीव कभी ब्रह्म नहीं हो सकता या अभिन्नता कभी भी नहीं है। अप्राकृत चिन्मय शरीर से भगवद्धाम की प्राप्ति ही मुक्ति है यथा—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयम शाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ भा० गी० ८।१५॥ स्वभक्तं वासुदेवोऽपि संप्राप्यानन्दमक्षयम्। पुनरावृत्ति रहितं स्वीयं धाम प्रयच्छति ॥

यह मुक्ति भगवान् की कृपा से भक्ति प्रपत्ति द्वारा ही सम्भव है। पूर्व पूर्वमूर्ति उपासना द्वारा, दुरितक्षय होने पर सूक्ष्म उपासना पर्यन्त ही इसका पर्यवसान है। सायण माधवाचार्य प्रणीत सर्वदर्शन संग्रह में रामानुज दर्शन प्रकरण में कहा है—

तदेतत्सर्वं हृदि निधाय भगवद्बोधायनाचार्य कृतां ब्रह्मसूत्र वृत्तिं विस्तीर्णामालक्ष्य रामानुजः शारीरकमीमांसा भाष्यमकार्षीत् ॥

धीरे-२ यह आचार्य मत के बदले आचारियों का मत कहा जाने लगा प्रपत्ति शरणागति का भाव गौण हो गया, जाति विशेष के व्यक्तियों को ही अधिकारी समझा गया। बाह्याचार अपनी सीमा को पार कर गया उपासना जो लक्ष्य थी वह क्रियाओं में फँसकर संकीर्ण हो गई। इस स्थिति में अन्य वैष्णवमत मार्ग प्रदर्शक हुये।

माध्वदर्शन :—महाप्रभु श्रीमाध्वाचार्य द्वारा सञ्चालित द्वैतवाद ही पूर्ण प्रज्ञ दर्शन कहलाता है। इस मत में जीव, ब्रह्म, यही दो तत्त्व हैं। जीव अणु और दासभूत है ब्रह्म सगुण साकार सविशेष तथा स्वतन्त्र है। जीव का परम लक्ष्य सालोक्यादि मुक्ति प्राप्ति में है। जीव को ब्रह्म समझना दोष तथा अपराध है। दृश्य जगत् सबसे अभिन्न है। विकारी, परिणमनशील होते हुये भी मिथ्या नहीं है। क्योंकि असत्य का ज्ञान नहीं होता। ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय से सम्बद्ध है। ज्ञान, चिन्तन पदार्थ से भिन्न नहीं है। ज्ञान सविकल्पक पदार्थ का ही होता है। ज्ञान अपेक्षाकृत है। ज्ञान ही ज्ञेय का बोधक एवं प्रमाण है। ब्रह्म का ज्ञान केवल शास्त्र द्वारा ही होता है। वह वाणी द्वारा नहीं जाना जा सकता। इस मत में भेद को पाँच प्रकार का रूप दिया गया है। जीव से ईश्वर का भेद; जड़ से ईश्वर का भेद, जीव का जड़ से भेद, जीवों का परस्पर भेद, जड़ का परस्पर भेद। ये भेद सदातन हैं नाश नहीं होते अतः अनादि तथा सत्य हैं। ये भेद भ्रम द्वारा उत्थित नहीं है अतः इनकी निवृत्ति नहीं होती। भाववस्तु, गुण, क्रिया, जाति, विशेषत्व विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव ये दश पदार्थ इस सिद्धान्त में प्रमाण तथा युक्ति द्वारा सिद्ध किये गये हैं। भाव वस्तु दो प्रकार की है, चेतन तथा अचेतन। परमतत्त्व ब्रह्म भगवान् विष्णु हैं। भक्ति, त्याग तथा ध्यान द्वारा जीव इनको प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। यही इस मत का संक्षेप है।

द्वैताद्वैतवाद :— इस वाद का प्रकाश करने वाले महाप्रभु श्रीनिम्बार्काचार्य हैं। इनके मत में द्वैत, तथा अद्वैत स्वाभाविक है श्रु तियों में द्वैत का प्रतिपादन है, अतः द्वैत, अद्वैत दोनों सत्य हैं।

जगत् ब्रह्म का परिणाम है। ब्रह्म में परिणाम होने पर भी वह विकृत नहीं होता। ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है उसका सगुण साकार भाव ही मुख्य है। जीव भी ब्रह्म का ही परिणाम है। जीव और जगत, ईश्वर से पृथक् भी हैं और ईश्वर में रहकर इनकी अपृथक् भी सत्ता है। जगत् के रहने पर ब्रह्म निर्गुण निराकार है। ब्रह्म ही इस जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण है। जीव ब्रह्म का अंशभूत है, उससे भिन्न भी है और अभिन्न भी। जीव अणु स्वरूप वाला है। उपासना के द्वारा ही जीव मुक्त होता है। मुक्त जीव ब्रह्म से अपनी अभिन्नता का अनुभव करता है। इस मत में विशिष्टाद्वैत को सिद्ध करने वाली भेदवादिनी श्रुति तथा अद्वैतवाद को सिद्ध करने वाली अभेदवादिनी

श्रुतियों को प्रमाण रूप से ग्रहण करके द्वैत और अद्वैत दोनों को एक में मिलाने की युक्तियां दी गई हैं।

शुद्धाद्वैतवाद :— इस मत के प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य हैं इस वाद में जगत् के मिथ्यात्व का खण्डन किया गया है। इस दर्शन में एक ही ब्रह्म तत्त्व है वह निर्गुण नहीं है सगुण है। भगवान् श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं वे निर्गुण, निर्विशेष, कर्ता, भोक्ता निर्विकार, गुणातीत आदि समस्त विरुद्ध धर्मों के आश्रयभूत, संसार के धर्म से रहित जगत् के उपादान कारण हैं। जगत् सत्य है, कार्य है, ब्रह्म से अभिन्न इसका परिणाम है। ब्रह्म परणामी होकर भी विकारी नहीं है। पदार्थों का आविर्भाव, तिरोभाव होता रहता है। जीव शुद्ध तथा अणु रूप है। ब्रह्म के प्रति अनुराग ही जीव का श्रेष्ठमार्ग है। इस अनुराग की चरमावस्था पतिभाव द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति है। यह भाव भगवदनुग्रह से ही उदय हो सकता है। ब्रह्म का विवेचन शास्त्र द्वारा ही हो सकता है। अतः इस मत में उपासना की ही पुष्टि की गई है।

अचिन्त्य भेदाभेदवाद :— श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा श्रीगोस्वामिपादों ने इसे दार्शनिक रूप दिया है। श्रीमद्भागवत को ही गीता, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र का भाष्य महाप्रभु ने माना था। अतः प्रस्थानत्रयी पर भाष्य न करके भागवत् के भाष्य से ही यह मार्ग पुष्ट किया गया है। अब ब्रह्मसूत्र पर भी भाष्य उपलब्ध है। ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल और कर्म ये पाँच तत्त्व हैं। ईश्वर का ज्ञान शास्त्र से ही होता है। सगुण सविशेष भगवान् श्रीकृष्ण ही ब्रह्म तत्त्व हैं। वे स्वतन्त्र सर्वज्ञता आदि गुणनिलय जीव को भुक्ति मुक्ति देने वाले हैं। निर्गुण हैं अर्थात् प्राकृत गुण रहित हैं। सच्चिदानन्द प्रभु श्रीकृष्ण की संवित् सन्धिनी और ह्लादिनी ये तीन शक्तियां हैं। जगत ब्रह्म का परिणाम है। यह सत् होते हुये भी अनित्य है। ईश्वर, जीव, काल, और प्रकृति ये चारों तत्त्व नित्य हैं। प्रकृति ब्रह्म की शक्ति है त्रिगुणात्मिका है। कर्म जड़ हैं, ईश्वर की शक्ति रूप हैं। जीव अणु है ईश्वर का भोग्य है। प्रेम के द्वारा ईश्वर (श्रीकृष्ण) का सान्निध्य प्राप्त कर लेना ही जीव की मुक्ति है। समस्त वैष्णवदर्शन उपासना की सिद्धि के लिये हैं। अतः जगत् की सत्यता तथा ब्रह्म का सविशेष रूप ही प्रतिपादित है।

इन दर्शनों के अतिरिक्त भारतीय अन्य दर्शन भी ईश्वरवादी हैं विस्तार के भय से केवल उनका नाम मात्र ही दिया जाता है। जैसे "नकुलीश पाशुपत दर्शन", "शैव-दर्शन", "प्रत्यभिज्ञा-दर्शन", "रसेश्वर-दर्शन" पाणिनि-दर्शन" "पाशुपत-दर्शन" "शिवाद्वैत-दर्शन" "शक्ति-दर्शन" "भक्ति-दर्शन" "वैद्यक-दर्शन" "ज्यौतिष-दर्शन"। भारतीय दर्शन की यही विशेषता है कि एकत्व में अनेकता की अभिव्यक्ति और अनेकत्व में एकता का दर्शन। हाँ अनेकता में एकत्व का व्यवहार ठीक नहीं चल सकता। पशु

विवाह के पश्चात् श्रीराघवेन्द्र श्रीजनकनन्दिनी को लेकर जब श्रीअवध आये तब उन्होंने श्रीअवधधाम में ऋतु के अनुकूल बहुत काल तक विहार किया— "रामस्तु सीतया सार्द्धं विजहार बहून् ऋतून्। मनस्वी तद्गतस्तस्या नित्यं हृदि समर्पितः॥ प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति। गुणाद् रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभ्यवर्धत॥ पूर्व में यह कहा गया कि श्रीरामजी अपने पिता की आज्ञा से पुरवासियों के प्रिय एवं हितसाधक कार्यों को करते हैं। गुरु, ब्राह्मण, पिता-माता एवं समस्त पुरवासीगण श्री-राघवेन्द्र के शीलगुण से उनके वशमें रहते हैं। अब श्रीकिशोरीजी के साथ उनकी विहार लीला को महर्षि वर्णन करते हैं— "रामस्तु सीतया सार्द्धं।" श्रीरामभद्र ने तो श्रीसीता जी के साथ बहुत ऋतुओं तक केवल विहार किया। 'तु' शब्द से पूर्वके कार्यों से विहार लीला की विलक्षणता कही गई है। जिन्होंने पूर्व में देव गुरु पितृ प्रजाराधन किया, वे ही, अब अपनी प्रेयसी पाणि गृहीता श्रीसीताजी के साथ धर्मानुकूल वात्स्यायन शास्त्रानु-सार प्रेमरस का रसास्वादन कर रहे हैं। यहाँ श्रीसीता में तृतीया विभक्ति है। अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती है। यहाँ विहारलीला में श्रीकिशोरीजी कभी कभी मुग्धावस्था धारण कर लेती हैं। श्रीगुणरत्नकोष में श्रीपराशर स्वामी ने भी कहा है— "भोगस्रोतसि कान्तदेशिक करग्राहेण गाहक्षमाः।" 'सीता' नाम से 'अयोनिजा होने से स्वाभाविक सौन्दर्य माधुर्यसार सर्वस्व विग्रह वाली होती हुई भी भोगरस सागर के प्रवाह में अप्र-धान हो गई' यह सूचित किया गया। यहाँ रसिकशिरोमणि श्रीराघवेन्द्र की विदग्धता सूचित है। 'विजहार' इस परस्मैपद की क्रिया से विहारलीला की समाप्ति का निषेध है। यदि विहारलीला का आश्रय श्रीरघुनन्दन होते तो आत्मनेपद होता।

इस प्रकार चिरकाल तक विहारलीला होने पर भी ऐसा अनुभव हो रहा है कि अभी विहारलीला प्रारम्भ हुई हो। रसिक सन्तों ने लिखा है— नहिं आदि न अन्त विहार करैं दोउ लाल प्रिया में भई न चिन्हारी।' अर्थात् अनन्तकाल विहार करने के पश्चात् भी श्रीप्रिया प्रियतम आपस में एक दूसरे को अभी पहिचान भी नहीं सके। श्री-विद्यापतिजी ने भी लिखा है—'जनम अवधि हम रूप निहारल नैन तृपित नहिं भेल।' संस्कृत के मनीषियों ने भी रमणीयता का लक्षण कुछ ऐसा ही किया है - 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।' क्षण क्षण में जो नित्य नवीन प्रतीत हो वहीं रमणीयता वास्तविक सुन्दरता है। श्रीसीतारामजी जिस प्रकार सच्चिदानन्द विग्रह हैं, उसी प्रकार उनका विहार भी सच्चिदानन्दमय है। श्रीराघवेन्द्र की प्राणवल्लभा श्रीसीताजी उनके समान ही अभिन्न ब्रह्मतत्व हैं। ऐश्वर्य एवं माधुर्यके भेद से ब्रह्म द्विधा स्थित है। श्री-सीताजी को श्रीजीव गोस्वामी, श्रीरूप गोस्वामी प्रभृति वैष्णवाचार्यों ने ब्रह्म श्रीराम की स्वरूपशक्ति एवं अभिन्न रस विग्रह कहा है। 'ऋतून'—ऋतून के स्थान पर 'वर्ष' भी कहा जा सकता था। ऋतून् की जगह 'संवत्सरान्' भी सम्भव था किन्तु 'ऋतु शब्द' से ऋतु

के अनुकूल विहार करते हैं यह अर्थ अभिप्रेत है। रसिकाचार्यों की वाणी में ऋतुओं के अनुकूल विहार का वर्णन है। वर्षाऋतु में तदनुकूल तथा शरद् शिशिर बसन्त आदि ऋतुओं में उन्हीं के अनुकूल विहार करते हैं। ऋतून् में द्वितीया विभक्ति अत्यन्त संयोग में है--'अत्यन्त संयोगे द्वितीया' इससे विहारलीला का निरन्तर रसानुभव एवं किसी प्रकार की भी बाधा का अभाव सूचित होता है। 'मनस्वी'--यहाँ 'भू मा' (व्यापक) अर्थ में मत्वर्थीय प्रत्यय है। श्रीकिशोरीजी जिस प्रकार विहार करना चाहती हैं, जितनी मात्रा में विहार करना चाहती हैं, उनसे अधिक मात्रा में प्रभु उनके संकल्पों को पूर्ण करते हैं--"संश्लेषदशायाम् सीता संकल्पमप्यतिशय्य भोगस्रोतः प्रवर्तयिता।'

'तद्गतः' -- तस्यां गतः तद्गतः -- 'सप्तमी' इसमें योग विभाग समास है जिस प्रकार वस्तु में जाति एवं गुण अभेद सम्बन्ध से सदा एक रस विद्यमान रहता है उसी प्रकार श्रीकिशोरीजी के साथ श्रीरामभद्र सदा एक रस अभिन्न रूप से विद्यमान रहते हैं। 'शुक्लः घटः' 'सफेद वस्त्र' इस वाक्य में वस्त्र से सफेदी तथा घटत्व उसकी जाति जिस प्रकार अभिन्न रहती है उसी प्रकार श्रीसीतारामयुगल एक दूसरे से अपृथक् सिद्ध सम्बन्ध से एक हैं 'तस्या नित्यं हृदि समर्पितः' श्रीराघवेन्द्र जिस प्रकार श्रीकिशोरी जी में अपना मन लगाये रहते हैं उसी प्रकार श्रीकिशोरीजी भी श्रीराघवेन्द्र पर अपना सर्वस्व न्योछावर किये रहती हैं। 'प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति।' श्री-किशोरीजी में श्रीरघुनन्दन का ऐसा अलौकिक प्रेम क्यों है? इसका उत्तर महर्षि देते हैं। 'प्रिया तु' अर्थात् श्रीजनकराजनन्दिनी, विदेह वंश वैजयन्ती श्रीकिशोरीजी श्रीराघवेन्द्र की 'प्रिया दारा पितृकृता' हैं। पितृकृता विशेषण से श्रीकिशोरीजी को पाणि गृहीता, स्वकीया, प्रिया दारा का महान् गौरव प्राप्त है। इस प्रकार सभी अवतारों की अपेक्षा श्रीराघवेन्द्र की आल्हादिनी शक्ति श्रीसीताजी को जो गौरव प्राप्त है वह किसी भी अव-तार में नहीं है इसी का संकेत-'प्रियातु' इस श्लोक में किया गया है। 'पितृकृता' का यह भी अर्थ है कि वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, वामदेव जाबालि आदि ऋषि मुनियों ब्रह्मा,-विष्णु, महेश प्रभृति त्रिदेवों एवं श्रीदशरथ श्रीमिथिलेश सहित कोटि-कोटि महापुरुषों के समक्ष लोक-वेद विधानके अनुसार श्रीसीताजी के साथ विवाह किया इसीलिये श्रीसीता-जी श्रीराम की पितृकृता प्रिया दारा है। द्वितीय विशेषता यह है कि श्रीकिशोरीजी रूप गुणों में भी अनुपम हैं-'गुणाद् रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभ्यवर्धत।' गुणात्-वेद शास्त्रोंके अगाध ज्ञान, संगीत एवं चौसठ कलाओं सहित समस्त विद्यायें श्रीकिशोरीजी में विद्यमान् हैं। जिसप्रकार 'स च सर्व गुणोपेतः कौशल्या नन्दवर्धनः' समस्त सद्गुणोंके सागर श्रीरामजी हैं उसी प्रकार श्री किशोरी जी भी 'सर्व लक्षण सम्पन्न नारीणामुत्तमा वधूः।' सभी दिव्य लक्षणों से सम्पन्न उत्तम वधू-नायिका हैं। केवल गुणों के कारण ही श्रीकिशोरी जी अनुपम नहीं हैं उनका रूप भी लोकोत्तर है--'रूपगुणाच्चापि'। श्रीकिशोरीजी के श्री-विग्रहका असमोर्ध्व सौन्दर्य भी असाधारण है। महर्षिजी ने श्रीरामरूप को पुरुष विमोहक

एवं असुर विमोहक स्थल-स्थल पर कहा है-'पुंसां दृष्टि चित्तापहारिणम् नहि तस्मान्मनः कश्चित् ।।' ऐसे विश्वविमोहन श्रीरामजी भी जिन श्रीकिशोरीजीको देखकर चकित रह जाते हैं उनकी सुन्दरता का वर्णन करना वाणी से परे है। तभी तो श्रीराघवेन्द्र कहते हैं :-- 'सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पट तरौं विदेह कुमारी ।।' गुण एवं रूप के साथ ही कुल आदि भी श्री किशोरीजी का अनुपम है यह 'अपि' से सूचित कर रहे हैं। इस प्रकार सर्वगुण सम्पन्ना, रूप की अधिष्ठात्री देवता श्रीकिशोरीजी में श्रीराघवेन्द्र की प्रीति निरन्तर बढ़ती रहती है। इस प्रकार श्रीराघवेन्द्र ने श्रीकिशोरीजी के साथ षड्ऋतुओं के अनुकूल विहार किया पूर्वोक्त दोनों श्लोकों का अन्वय एक ही है। 'तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते। अन्तर्जातमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा ।। तस्य भूयो विशेषेण मैथिली जनकात्मजा। देवताभिः समारूपे सीता श्रीरिव रूपिणी ।।' श्रीराघवेन्द्र में श्रीकिशोरीजी का भी असाधारण अनुराग है-अब इस बात की पुष्टि करते हैं--'तस्याश्च'-श्रीराघवेन्द्र की अपेक्षा श्रीसीताजी के हृदय में उनके प्रति अगाध अनुराग है। श्रीराघवेन्द्र का श्रीसीताजी के प्रति अनुराग पितृकृत एवं गुण-सौन्दर्यकृत है किन्तु श्रीकिशोरीजी का उनमें अनुराग गुण-सौन्दर्य मूलक नहीं किन्तु भर्तृत्वकृत है। श्रीराघवेन्द्र श्रीकिशोरी जी के प्राण-धन जीवन-धन हैं प्रियतम के प्रति उनका अनुराग सहज है। इस प्रकार श्रीकिशोरी का राघवेन्द्र में गुणकृत अनुराग नहीं है किन्तु सहज सम्बन्धकृत अनुराग है। इस अनुराग को श्रीरामभद्र कैसे जानते हैं। इसका उत्तर देते हैं--"अन्तर्जातम्--यद्यपि श्रीकिशोरीजी पति प्रेम को हृदय में छिपाये रहती हैं फिर भी उनका गुप्त अनुराग बाह्य लक्षणों से प्रकट हो जाता है। श्रीकिशोरीजी के समीप श्रीरामभद्र सदा विराजमान रहते हैं। अतः उनके हार्दिक प्रेम को भली-भाँति जानते रहते हैं। श्रीकिशोरजी 'मैथिली' हैं मिथिला देश वासिनी हैं तथा 'जनकात्मजा' योगीराज श्रीजनक की बेटी हैं। अतः पवित्र देश तथा वंश में उत्पन्न होने के कारण श्रीरामभद्र की अपेक्षा भी उनके हार्दिक भावों को भलीभाँति जानती रहती हैं। श्रीरामभद्र की जैसी इच्छा होती है संकेत के बिना ही समझ जाती हैं फिर तो उनके अनुकूल बन जाती हैं। प्रियतम की रुचि में अपनी रुचि मिलाये रहती हैं। प्रियतम ने भी श्रीकिशोरीजी की रुचि मिला रखी हैं। श्रीकिशोरीजी देवता के समान चातुर्य सम्पन्ना हैं तथा रूप में साक्षात् मूर्तिमती श्री के समान रूपवती हैं। तया स राजर्षि सुतोऽभिरामया समेयिवानुत्तम राजकन्यया। अतीव रामः शुशुभेऽतिकामया विभुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः ।।' श्रीसीतारामजी के परस्पर में असाधारण अनुराग कहा गया अब अंतिम पाँचवें श्लोक से दोनों के विहार की योग्यता का वर्णन करते हैं। श्रीराघवेन्द्र महाराजकुमार हैं तथा श्रीकिशोरीजी महाराजकुमारी हैं प्रियतम से भी ऐश्वर्यमें बढ़ी चढ़ी हैं। श्रीराम जगत् को रमण करानेमें समर्थ हैं तो श्रीकिशोरीजी भुवन विमोहन श्रीरामजी को भी रमण कराने में-परमानन्द प्रदान करने में समर्थ हैं।

❀ श्रीसीतारामाभ्यांनमः ❀

नत्वा रामञ्च सीताञ्च वायुसूनुं महाबलम् । आनन्दभाष्यकर्त्तारं रामानन्दार्य देशिकम् ॥१॥ विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तं पुरायेन प्रकाशितम् । आचार्यप्रवरं वन्दे बोधायनं परं गुरुम् ॥ २ ॥ चित्रकूटालयं राम धनीदासेति संज्ञकम् । तस्यानुचरभूतोऽहं वन्दे मन्त्र प्रदायिनम् ॥ ३ ॥ श्रीरामस्तवराजस्य परमाचार्य सम्मताम् । भाषावस्तु प्रचाराय कुर्वे तात्पर्य बोधिकाम् ॥ ४ ॥

ॐ अस्य श्रीरामस्तवराजमन्त्रस्य सनत्कुमार ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीरामो देवता श्रीसीताबीजं हनुमान् शक्तिः, श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥ १ ॥

ॐ सनत्कुमारऋषये नमः शिरसि । ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे । ॐ श्रीरामदेवतायै नमोहृदि । ॐ सीताबीजाय नमो गुह्ये । ॐ हनुमच्छक्तये नमः पादयोः । ॐ स्तवराजकीलकायनमः सर्वाङ्गे । इति ऋष्यादिन्यासः ॥

ॐ रामचन्द्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ सीतापतये तर्जनीभ्यां नमः । ॐ रघुनाथाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरताग्रजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ दशरथात्मजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ हनुमत्प्रभवे करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः । इति करन्यासः ॥ अथवा—

रां श्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । रीं श्रीं तर्जनीभ्यां नमः । रूं श्रूं मध्यमाभ्यां नमः । रैं श्रैं अनामिकाभ्यां नमः । रौं श्रौं कनिष्ठकाभ्यांनमः । रः श्रः करतल पृष्ठाभ्यां नमः नमः । इति करन्यासः ॥

ॐ रामचन्द्राय हृदयाय नमः । ॐ सीतापतये शिरसे स्वाहा । ॐ रघुनाथाय शिखायै वौषट् । ॐ भरताग्रजाय कवचायहुम् । ॐ दशरथात्मजाय नेत्र त्रयाय वौषट् । ॐ हनुमत्प्रभवे अस्त्रायफट् । इति हृदयादि न्यासः ॥ अथवा—

रां श्रां हृदयाय नमः । रीं श्रीं शिरसे स्वाहा । रूं श्रूं शिखायै वौषट । रैं श्रैं कवचायहुम् । रौं श्रौं नेत्राभ्यां वौषट् । रः श्रः अस्त्रायफट् । इति हृदयादि न्यासः ॥

सभी भगवत प्रेमियों को विदित हो कि इस स्तोत्र का प्रथम भाष्य अनन्त श्रीमधुराचार्य जी के कृपापात्र पूज्य श्रीहर्याचार्यजी महाराज ने संस्कृत में किया था। । उसीके आधार पर द्वितीय वृहद् भाष्य श्री १०८ श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज ने किया था। जिसको श्री १०८ श्री पं० रामबल्लाशरण जी महाराज एवं श्रीबावनजी महाराजी और श्रीकोठेवाले महाराजजी ने प्रकाशित करवाया था। उसी भाष्य की छाया स्वरूप वर्तमान समय में संक्षिप्त करके मैंने हिन्दी में अनुवाद किया।

हर्याचार्य-बोधायन आश्रम,
श्रीजानकीघाट-श्रीअयोध्याजी।

इस प्रकार ऋष्यादिन्यास करके "अयोध्या नगरे रम्ये" से लेकर एवं संचिन्तयेद् विष्णुम्" यहां तक तेरह श्लोक में कथित ध्यान को करे। अथवा "वैदेही सहितं सुरद्रुम तले" इत्यादि श्लोक द्वारा श्रीसीता सहित श्रीराम जी का ध्यान करके छह हजार या एक हजार आठ, या एक सौ आठ, षडक्षरतारकसंज्ञक श्रीराम मन्त्र जपकरके श्रीरामस्तवराज का पाठ करे। इसके अनन्तर नीचे लिखे मन्त्रों से जपादि श्रीरामजी को अर्पण करे।

समर्पण मन्त्र :–साधु वा साधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया। तत्सर्वं भगवन् राम गृहाणास्मत्कृतं जपम्॥ १॥ गुह्याद् गुह्यस्य गोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् कृपानिधे॥ २॥

इसके अनन्तर ब्रह्म समर्पण मन्त्र द्वारा श्रीरामजी को अर्पण करदें। यथा :—

प्राणबुद्धि मनोदेहाधिकारतः जागृत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्था सु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणमस्तु स्वाहा। मां मदीयं च सकलं श्रीरामचन्द्राय समर्पयामि।

श्रीरामजी को समर्पण करके भगवान् के मन्दिर में जाकर यथाधिकार पूजन कर हाथ जोड़कर निम्नलिखित आठ श्लोकों से प्रार्थना करे :—

"संसार सागरान्नाथौ पुत्र मित्र गृहात्कुलात्। गोप्तारौ मे दयासिन्धू प्रपन्नभयभंजनौ॥ १॥ योऽहं ममास्ति यत् किं चिदिह लोके परत्र च। तत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम्॥ २॥ अहमस्म्यपराधीन मालयस्त्यक्त साधनः। अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तावेव मे गती॥ ३॥ तवास्मि जानकीकान्त कर्मणा मनसा गिरा। रामकान्ते तवैवास्मि युवामेव गती मम॥४॥ शरणं वा प्रपन्नोऽस्मि करुणानिराकरौ। प्रसादं कुरुतां दासे मयि दुष्टेऽपराधिनि॥ ५॥ मत्समोनास्ति पापात्मा त्वत्समो नास्ति पापहा। इति संचिन्त्य देवेश यथेच्छसि तथा कुरु॥६॥ अन्यथा हि गतिर्नास्ति भवन्तौ हि गतीमम। तस्मात्कारुण्यभावेन कृपां कुरु कृपा निधे॥ ७॥ दासोऽहं शेषभूतोऽहं तवैव शरणं गतः। अपराधितोऽहं दीनोऽहं पाहि मां करुणाकर॥ ८॥

अवशिष्ट समय श्रीसीताराम जी के नाम जप में लगावे तो जिस किसी भी देह के अवसान में श्रीराम जी की प्राप्ति अवश्य होगी।

❀ श्रीरामस्तवराज स्तोत्र ❀

श्रीसूतउवाच :—

सर्व शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञं व्यासं सत्यवती सुतम् ।
धर्म पुत्रः प्रहृष्टात्मा प्रत्युवाच मुनीश्वरम् ॥ १ ॥

सूतजी बोले—सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञं=सभी शास्त्रों के अर्थ तथा तत्त्व को जानने वाले, सत्यवती सुतम्=सत्यवती के पुत्र, मुनीश्वरम्=मुनियों में श्रेष्ठ, व्यासं=श्री व्यास जी को, प्रहृष्टात्मा=प्रसन्नचित्त, धर्मपुत्रः=राजा युधिष्ठिर बोले।

विशेष :- श्रीरामस्तवराज के प्राथमिक प्राकट्य व्यक्त करने के लिये श्रीव्यास युधिष्ठिर संवाद को ग्रंथ के अवतरण में दिया जा रहा है—श्रीव्यास जी ने सांख्यशास्त्र को पूर्व पक्ष बनाकर (ईक्षतेर्ना शब्दम् ब्र० सू०, १।१।५) आदि वेदान्त सूत्रों द्वारा श्री-रामजी के स्वरूप को ही सिद्धान्त माना है।

मुनीश्वर पद से (मन्तारो वेदशास्त्रतत्त्वावगन्तारो मुनयः तेषाम् ईश्वरः) श्री व्यासजी के मतको सर्वजन उपादेय एवं व्यासजी को परब्रह्म निष्ठ व्यक्त किया। प्रहृष्टात्मा का भाव यह है कि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु मेरे भाग्य से प्राप्त हो गये हैं, अब मेरे सभी संशय निवृत हो जायेंगे और अभिलषित इष्ट की अवाप्ति भी होगी, (सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ पद से ब्रह्म निष्णात् सूचित किया)। "कारणन्तु ध्येयम्" इत्यादि शास्त्रों द्वारा सर्व कारणत्व को ध्येय ज्ञेय मोक्षदाता सुनकर, विभिन्न उपनिषद् पुराणादि में शिव रुद्र प्रजापति शब्द वाच्य कहीं निरञ्जन निराकारादि शब्द वाच्य कहीं विष्णु नारायण नृसिंह वासुदेव हरि कृष्णादि शब्द वाच्य को ही नित्य तथा सर्वकारणत्त्व सुना गया। अतः यह संशय स्वाभाविक है कि सबसे उत्कृष्ट कौन है इस संशय की निवृत्ति शब्द ब्रह्मनिष्ठ तथा परब्रह्म निष्ठ गुरू के द्वारा ही हो सकती है। श्रुतियों का यह घोष है "आचार्यवान्पुरुषोवेद" "तद्विज्ञानार्थं सगुरूमेवाभिगच्छेत्" "स विद्वान् प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्म विद्याम्" इत्यादि श्रुति कथित श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरु व्यासजी को प्राप्त कर किं तत्त्वमादि तीन प्रश्न श्रीयुधिष्ठरजी ने किये ॥१॥

युधिष्ठरउवाच=युधिष्ठिर बोले :-

"भगवन् योगिनां श्रेष्ठ सर्व शास्त्र विशारद ।
किं तत्त्वं किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्ति साधनम् ॥ २ ॥
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि मे मुनिसत्तम् ।

युधिष्ठिर जी ने कहा :-

भगवन्=हे भगवान्। योगिनां श्रेष्ठ=(प्राकृत वाह्य विषयों से चित्त-वृत्ति निरोध को योग शब्द से कहा जाता है, वह योग जिसमें हो वह योगी है, उन योगियों में)

श्रेष्ठ=उत्तम। सर्व शास्त्रविशारद=वेदाङ्गादि सभी शास्त्रों के पारङ्गत विद्वान्। किं तत्त्वं=तत्त्व क्या है। किं परं जाप्य=सर्वोत्कृष्ट जपने योग्य क्या है। मुक्ति साधनं ध्यानं किम=मुक्ति प्रदान करने वाला ध्यान किसका है। मुनि सत्तम=हे मुनि श्रेष्ठ तत्सर्वं=इन तीनों प्रश्नों का सम्पूर्ण अर्थ, श्रोतुमिच्छामि=सुनना चाहता हूं। मे=मेरे लिए, ब्रूहि=आप बतलायें।

विशेष :– शब्द ब्रह्म परंब्रह्म ममोभे शाश्वतीत नू। शब्द ब्रह्म तथा परब्रह्म भगवान के सनातन शरीर हैं। "शब्द ब्रह्मणि निष्णातो न निष्णातः परे यदि। श्रमस्तस्य श्रमफलं ह्यधेनुमिव रक्षतः॥" केवल शब्द ब्रह्मनिष्णात से शिष्य का उपकार सर्वथा नहीं हो सकता, केवल परब्रह्म परायण से भी शिष्य यथेष्ट उपकृत नहीं होगा। उपासना दृढ़ करने के लिये शास्त्रीय शब्दावली अपेक्षित है, भगवान् वेद-व्यासजी में उभय नैपुण्य नैसर्गिक है। अतः प्रश्नत्रय किये गये। "किं तत्त्वम इस श्लोक में जाप्य का विशेषण जो परं पद है वह देहली दीपक न्यायेन तत्त्वं तथा ध्यानं से अन्वित है, क्योंकि उत्तर में "तदेव परमं तत्त्वं कहा गया है, परजाप्य वाच्य पर तत्त्व है और पर जाप्य वाच्य ही पर ध्यान भी उपपन्न होता है। इसी प्रकार मुक्तिसाधनम् पद का भी काकाक्षी गोलक न्यायेन तत्त्वं एवं जाप्यं के साथ अन्वय है। क्योंकि उत्तर में कैवल्य पद कारणं श्रुत है। तत्त्वों के मध्य में परमार्थभूत सर्वोत्कृष्ट सर्वमूल अनादि तत्त्व क्या है? सब जाप्य मन्त्रों में सबसे श्रेष्ठ जपने योग्य मन्त्र कौन सा है?। संसार विच्छेद पूर्विका श्रीराम पद प्राप्ति का साधनभूत उपाय स्वरूप ध्यान किसका है किस प्रकार ध्यान करने पर तत्त्व मुक्ति प्रदान करते हैं ॥२॥

श्रीव्यास उवाच :--

"धर्म पुत्र महाभाग शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥

श्रीवेदव्यास जी बोले—धर्मपुत्र=हे धर्म पुत्र। महाभाग=हे महाभाग, तत्त्वतः=यथार्थ। वक्ष्यामि=कहूँगा। शृणु=आप सुनें।

विशेष :– इस प्रकार परतत्त्व आदि जानने की इच्छा आप जैसे धर्मपुत्र महाभाग को ही हो सकती है; अतः मुक्ति का साधन जो परतत्त्व पर-जाप्य पर-ध्यान है, उसे हम स्पष्ट रूप से कहेंगे, सावधान होकर आप उसे धारण करें? तत्त्वतो वक्ष्यामि का अभिप्राय श्रीरामस्तवराज भाष्यकार स्वामी श्रीमद्दुर्याचार्य जी महाराज ने अधोलिखित प्रकार से व्यक्त किया है। यथा—तत्तद्ग्रन्थों में, तत्तद्ग्रन्थकार तत्तद्ग्रन्थाधिष्ठात भगवद् विग्रह में कार्यकारण का अभेद दृष्टि द्वारा उन-उन स्वरूपों में परम कारण का निश्चय किया है। उपासक जनों ने "गुणातीत पर-ज्योति आदि शब्दों का परतत्त्व में ही पर्यवसान माना है। श्रुति समुदाय द्वारा—

"पुरुषएवेदं सर्वम् साक्षीचेताः केवलोनिर्गुणश्च" तद्रूपमनामयम्
"अत्रायं पुरुषो ज्योतिः" "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते"

"न तस्यप्रतिमास्ति" तथा युक्ति द्वारा स्वस्वोपास्य देवताओं में सर्वोत्कृष्टत्व का ज्ञापन भक्तजन करते हैं तथा कार्य कारण रूप से श्रूयमाण भगवान् के सभी रूपों में पूर्वोत्तर अवस्था का भेद होने पर भी वस्तुतः अभेद होने के कारण यह सब हो सकता है। किन्तु इन सब में, आदि कारण तत्त्व क्या है। इस बात को जानने के लिये युधिष्ठिर जी ने सर्व शास्त्रविशारद, योगिनां श्रेष्ठ इन दो पदों से सर्वज्ञ तथा ब्रह्मनिष्ठ ज्ञापन द्वारा परतत्त्व को समझाने में समर्थ जानकर श्रीव्यास जी को आचार्यत्वेन वरण किया। वक्ष्यामि पद से भगवान श्रीवेदव्यासजी ने भी उपास्य देवताओं में जो आदि कारण है, उसको बतलाने की प्रतिज्ञा की ॥३॥

"यत्परं यद्गुणातीत यज्ज्योतिरमलं शिवम्।
तदेव परमं तत्त्वं कैवल्य पद कारणम् ॥ ४ ॥

यत्परं=जो सबसे परे है, यद्गुणातीतम=जो प्रकृति के गुणों से असम्बद्ध है, यज्ज्योतिरमलं शिवम=जो कल्याणप्रद एवं शुद्ध ज्योति स्वरूप है, तदेवपरमं तत्वं=वही परमतत्व है, कैवल्य पद कारणम्=और मोक्ष प्रदान करने वाला है।

विशेष :---यत्परं सर्वोत्कृष्ट "महतो महीयान" न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। "तं देवतानां परमं च दैवतम्" "तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्" इत्यादि श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित है। वह कौन तत्व है स्वयं नारद जी ने "परात्परं राममहं भजामि" आदि शब्दों से कहा है। गुणातीत पद से सत्वादि गुणों का अतिक्रमण करके विराजमान है यह सूचित किया। जिसको श्रुतियाँ कहती हैं 'साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च"। गुणातीत का निर्विशेष अर्थ नहीं है क्योंकि श्रुतियाँ स्वरूपनिष्ठ साक्षी आदि गुणों का वर्णन करती हैं। "निदानं प्रकृतेः परम्" प्रकृति परत्व में ही गुणातीत का तात्पर्य है। सगुण निर्गुण शब्द से अनन्त दिव्य कल्याण गुणगणविशिष्ट, हेय प्राकृत गुण रहित का ही प्रतिपादन है। "अनन्त कल्याण गुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशाद्धृत भूतसर्गः" "सत्वादयो न सन्तीशे यत्र चाप्राकृताः गुणाः"। महद् गुणानामाधारो रहितः प्राकृतैर्गुणैः"। अमल पद से माया मल रहित अर्थात् विशुद्ध सत्वगुणात्मक परविभूति स्वामी अर्थ की उपपत्ति हुई। शिवम् से सर्वदा मङ्गलरूप अर्थ सूचित हुआ। इस प्रकार जो परमतत्व हैं वही कैवल्यपद अर्थात् त्रिपादविभूति के प्रदाता हैं। यह "किं तत्वम्" इस प्रथम प्रश्न का उत्तर है. यत् कैवल्य पद कारणं तदेव परमं तत्वं श्रीरामेति। यहाँ श्रीराम पद पूर्वान्वयी है। देहली दीपकन्यायेन दोनों श्लोकों में इसका सम्बन्ध नहीं है ॥४॥

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकम्। ब्रह्महत्यादि पापघ्नमिति वेदविदो विदुः॥५॥

श्रीरामेति तारकं परं जाप्यम्=(श्रीराम) यह तारक मन्त्र श्रेष्ठ जप के योग्य है, ब्रह्म संज्ञकम्=ब्रह्म का वाचक है, ब्रह्महत्यादि पापघ्नम=ब्रह्म हत्यादि पाप का नाश करने वाला है, इति वेदविदो विदुः=वेद के ज्ञाता इस प्रकार कहते हैं।

विशेष :- गुणातीत पर आदि सामान्य शब्द द्वारा विशेषरूप अभिव्यक्त न होने के कारण परमतत्व में सन्देह होना स्वाभाविक है इसलिए श्रीरामेति कहा गया। इति शब्द प्रथम प्रश्न की समाप्ति का द्योतक है। सच्चिदानन्द अर्थ वाला रामपद वाच्य ही परमतत्व है। "रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥" इस श्रुति में सत्यानन्द चिदात्मा में ही योगियों का रमण कहा गया है, अतः सच्चिदानन्दार्थक राम शब्द से दाशरथी राम ही परब्रह्म परतत्व कहे जाते हैं। नारद जी आगे स्वयं कहेंगे – "परात्परतरं तत्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम। मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥" द्वितीय प्रश्न "किं परं जाप्यम् का उत्तर "तारकं ब्रह्म संज्ञकम" कहा गया। जो तारक मन्त्र श्रुति स्मृति में प्रसिद्ध है वही ब्रह्म वाचक तथा जपने योग्य है। हारीत स्मृति में लिखा है "श्रीरामाय नमो ह्येतत्तारकं ब्रह्म संज्ञकम्। नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एष महामनुः ॥ अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेनतु समाः कृताः। अतः राम मन्त्र ही तारक मन्त्र है। पुराणों में भी राममन्त्र तारक के रूप में प्रसिद्ध है यथा—

श्रीराम रामेति ह्येतत्तारकमुच्यते। अतस्त्वं जानकीनाथ परं ब्रह्मासि निश्चितम्॥५॥

श्रीराम रामेति जना ये जपन्ति च सर्वदा। तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः॥६

श्रीराम रामेति=श्रीराम राम, ये जनाः=जो मनुष्य, सर्वदा=हर समय, जपन्ति=जपते हैं। तेषाम्=उन मनुष्यों को, भुक्तिः=सांसारिक सुख भोगों के पदार्थ, च=तथा, मुक्तिः=मोक्ष, भविष्यति=प्राप्त हो जाता है, न संशयः=इस विषय में संदेह नहीं है।

विशेष :- पहिले श्लोक में राम मन्त्र की महिमा कहकर अब राम नाम की महिमा कह रहे हैं। श्रीराम राम अक्षरद्वय नित्य जपने से अर्थात् शब्द मात्र के उच्चारण से ऐहिक सुख के सभी उपकरण धन स्त्री पुत्र गौ वाहन भूम्यादि तथा संसार विच्छेद पूर्विका सामीप्यादि मुक्ति अन्त में निस्सन्देह मिलती है यथा—

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा जपन्, जन्तुरुपैति मुक्तिम् ॥ श्रीराम नाम स्मरणे मानसं यस्य वर्तते। तस्य वैवस्वतो राजा करोति लिपि मार्जनम् ॥ द्विजो वा राक्षसो वापि पापी वा धार्मिकोऽपि वा। राम रामेति यो वक्ति स मुक्तो नात्र संशयः ॥इति ब्रह्म पुराण॥

यामल में भी इसी प्रकार नाम की महिमा गाई गई है, यथाः-

श्रीरामनामाक्षर मन्त्रबीजं संजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा । हालाहलं वा प्रलयानलम्वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतोभीः ॥६ ॥

स्तवराजः पुराप्रोक्तो नारदेन च धीमता ।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि हरिध्यानपुरः सरम् ॥७॥

पुरा = पहिले, धीमता = बुद्धिमान, नारदेन = देवर्षि श्रीनारदजी ने स्तवराजः = स्तवराज नामक स्तोत्र को, प्रोक्तः = कहा है, तत्सर्वं = वह सब, हरिध्यानपुरः सरम् = भगवान श्रीहरि का ध्यान कथन पूर्वक, सम्प्रवक्ष्यामि = अच्छी प्रकार से कहूँगा ।

विशेष :-- तारक राममन्त्र के जप के अन्त में जो अवश्य करणीय स्तव है, जिसे श्रीनारदजी ने कहा है वह श्रीरामस्तवराज है । च शब्द से श्रीसनत्कुमार प्रोक्त का भी समुच्चय समझना चाहिये, धीमता पद से छान्दोग्य निर्दिष्ट सनत्कुमार द्वारा प्राप्त पर विद्या सम्पन्न नारद जी "कृताञ्जली पुटो भूत्वा" इत्यादि तीन श्लोकों से नारद जी कथित ध्यान का वर्णन है, अतः काकाक्षि गोलकन्यायेन हरि ध्यान पुरः सरम् का स्तवराज में अन्वय है, स्तवराज भाष्यकार स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज ने कहा है-- "हरि ध्यान पुरः सरम् स्तवराजं प्रोक्तं नारदेन यत्तद्धरि ध्यान सहितं स्तवराजं सर्वं सम्पूर्णमहमपि हरि ध्यान पुरः सरं हरि ध्यान पूर्वकं वक्ष्यामि" इति । नारदजी कृत ध्यान 'चिन्तयन्नद्भुतं हरिम्' श्रीव्यास जी कृत ध्यान "अयोध्या नगरे रम्ये" इत्यादि रूप से ज्ञातव्य है । तापत्रयाग्नि शमनादि बारह नपुंसक लिङ्ग के विशेषण होने के कारण स्तवराज पद में भी नपुंसकत्व कल्पना है और यह आर्षत्वात्साधु है ॥ ७ ॥

तापत्रयाग्निशमनं सर्वाघौघ निकृन्तनम् ।
दारिद्र्य दुःख शमनं सर्व सम्पत्करं शिवम् ॥ ८ ॥

तापत्रयाग्निशमनं = तापत्रय (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) रूप अग्नि को शान्त करने वाला, सर्वाघौघनिकृन्तनम् = सम्पूर्ण पापों के समूह को नष्ट करने वाला, सर्व सम्पत्करं = समस्त सम्पत्ति प्रदान करने वाला, शिवम् = एवं कल्याण देने वाला है ।

विशेष :--श्रोतागण की प्रवृत्ति के लिये स्तवराज के फल को दिखाया जा रहा है । आध्यात्मिक दुःख शारीरिक तथा मानस भेद से दो प्रकार का होता है, वात पित्तादि के प्रकुपित होने पर ज्वर, अतीसार आदि दुःख शारीरिक हैं मानस दुःख प्रिय वियोग अप्रिय संयोग होने से मन में क्लेश होता है । आधिभौतिक दुःख, मनुष्य पशु पक्षी आदि चौदह प्रकार के प्राणियों द्वारा होता है । "अष्ट विकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्चपञ्चधा भवति" । मानुषकश्चैक विधः समासतो भौतिकः सर्गः । जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज रूप

स्थूल शरीर वाले प्राणियों द्वारा प्राप्त दुःख ही आधिभौतिक दुःख है। आधिदैविक, दिवः प्रभव वात वर्षातपशीतोष्ण के कारण होने वाले दुःख को कहते हैं। इन तीनों प्रकार के तापों से उत्थित अग्नि का शामक, ब्रह्म हत्यादि महान् पापों का नाशक, सर्व सम्पत्ति प्रदायक, तथा सभी प्रकार के मंगल प्रदान करने वाला है ॥ ८ ॥

विज्ञानफलदं दिव्यं मोक्षैक फल साधनम् ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि रामं कृष्णं जगन्मयम् ॥ ९ ॥

विज्ञानफलदं = विज्ञान रूप फल देने वाला, दिव्यम् = प्राकृतहेय गुणरहित मोक्षैक फलसाधनम् = संसारविच्छेद पूर्वक मोक्ष रूप प्रधान फल के साधन, (अर्थात् मुख्यउपाय-भूत) जगन्मयं = संसार धर्म प्रधान, कृष्णं = इन्द्रनीलमणि के समान, रामं = परात्पर तत्व दशरथ पुत्र से प्रसिद्ध, नमस्कृत्य = नमस्कार करके, प्रवक्ष्यामि = श्रीरामस्तवराज को कहूँगा।

विशेष :—विज्ञान पद से विशेषण विशिष्ट ज्ञान, अर्थात् परिकर सहित श्रीरामजी के अनुरूप ज्ञानफल का देने वाला, मोक्षैकफल साधन श्रीरामजी के साक्षात्कार रूप मुख्य फल का उपायभूत है अर्थात् सम्पूर्ण वेदसार होने के कारण सब साधनों में श्रेष्ठ साधन है।

इस प्रकार के स्तवराज को जगन्मयम् जगद्धर्म प्रधान जगद्धर्म प्रचुर कृष्ण अर्थात् नीलमणिके आभा के सदृश, प्राणियों के चित्तापकर्षक परात्परतर सत्यानन्द चिदा-त्मक, राघवरघुनन्दनादि शब्द द्वारा अभिधीयमान भगवान् श्रीरामजी को नमस्कार करके श्रीरामस्तवराज को कहूँगा। नमस्कृत्य पद ध्यान का उपलक्षक है अतः "अयोध्या नगरे रम्ये" इस ध्यान के कथनान्तर ही स्तवराज को कहा गया, इसलिये प्रवक्ष्यामि की भवि-ष्यत्कालिकी क्रिया भी उपपन्न हो गई। जगद्धर्म प्रधान या जगद्धर्म प्राचुर्य महारासी श्रीजानकी जी के विरहकाल में श्रीलक्ष्मण कुमार के मूर्छाकाल में अत्यन्त शोकाकुल होना श्रीरामजी का प्रसिद्ध ही है यथा—आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ॥ ९ ॥

अयोध्या नगरे रम्ये रत्नमण्डप मध्यगे ।
स्मरेत् कल्पतरोमूले रत्न सिंहासनं शुभम् ॥ १० ॥

रम्ये = रमणीक, अयोध्यानगरे = श्रीअयोध्यापुरी में, रत्नमण्डलमध्यगे = रत्नों से बने मण्डप के मध्य भाग में, कल्पतरोमूले = कल्पवृक्ष के नीचे, शुभम् = सुन्दर रत्न-सिंहासनम् = रत्न जटित सिंहासन का स्मरण करे।

विशेष :—श्रीयुधिष्ठिर के दो प्रश्नों का उत्तर देकर, हरिध्यानपुरः सरस्तवराज के कहने की प्रतिज्ञा करके 'किं ध्यानं मुक्ति साधनम्' इस तृतीय प्रश्न के उत्तर में भगवान्

का ध्यान करने के लिये श्रीअयोध्याजी में श्रीदशरथ पुत्र रूप से आविर्भूत हैं इस कथन के ज्ञापनार्थ आरम्भ में उनके धाम योगपीठ को दिखलाया जा रहा है। अविद्यादि दोष युद्ध करने में असमर्थ, ऐसी श्रीअयोध्या जी का स्मरण करे, अर्थात् परममनोहर श्रीअयोध्याजी का पहिले स्मरण करके, उनके मध्य रत्नमण्डप का स्मरण करे। रत्नमण्डप के मध्य में कल्पवृक्ष का स्मरण करे, कल्पवृक्ष के नीचे सुन्दर रत्न निर्मित सिंहासन का स्मरण (ध्यान) करे ॥ १० ॥

तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नाना रत्नैश्च वेष्टितम् ।
स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्य तेजसम ॥११॥

तन्मध्ये = रत्नसिंहासन के मध्य में, अष्टदलं = आठ दल का रत्नमय, पद्मं = पद्मासन नानारत्नैश्च = अनेक जाति के बहुमूल्य रत्नों से, वेष्टितम् = आच्छादित, मध्ये = पद्मासन के मध्य में, दाशरथिं = श्रीदशरथ जी के पुत्र रूप से आविर्भूत, सहस्रादित्य-तेजसम् अनन्त सूर्य तेज सम्पन्न, श्रीराम जी का, स्मरेत् = ध्यान करे।

विशेष : ध्यान के प्रकरण की समाप्ति में "एवं सञ्चिन्तयेद् विष्णुं यज्ज्योतिरमलं शिवम्" कहा है आदि में "यज्ज्योतिरमलं शिवं परमं तत्त्वम्" वहां उन्हीं श्री दशरथ राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी का अनन्त सूर्य तेज समान ध्यान करे। यहाँ सहस्रादित्यादि पद में सहस्र शब्द आनन्त्य अर्थ का वाचक है यथा—"शतं सहस्रमयुतं सर्वे ह्यानन्त्यवाचकाः।" आगे भी भानुकोटि प्रतीकाशं किरीटेन विराजितम्" में कोटि शब्द अनन्तवाचक है यहां कैमुतन्यायेन (अनन्त सूर्य तेज सदृश जिनका किरीट हैं उनकी विग्रह क्या वैसी नहीं होगी अवश्य होगी) यह अर्थ अभीष्ट है। लोक में सूर्य तेज ही सब तेजों से अधिक देखा जाता है इसलिये अगत्या सूर्य तेज की उपमा दी गई है। "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" श्रुतिघोषित श्रीरामजी ही श्रीरामजी के सदृश हैं। अर्थात् जो अन्य तेजसे अभिभूत न हो सके। सहस्रादित्य सदृश तेज को धारण किए हैं यह अर्थ नहीं करना चाहिये क्योंकि, माधुर्य रस से विरोध होगा। यहाँ ऐश्वर्य गौण माधुर्य प्रधानपरक ध्यान है। यथा--

पितुरङ्कगतं राममिन्द्र नीलमणि प्रभम् कोमलाङ्गं विशालाक्षं विद्युद्वर्णा-वरावृतम् ॥ भानु कोटि प्रतीकाशं किरीटेन विराजितम् ।

इस प्रकार परतत्त्व स्वप्रकाश ज्योतिस्स्वरूप, अपने ऐश्वर्य तेज को छिपाकर सर्वजन नयन गोचरता प्राप्त पिता की गोद में विराजमान हैं। दशरथ राजकुमार रूप से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। श्रीराम स्तवराज भाष्यकार श्रीहरिदास जी महाराज ने माधुर्य किसी का विरोधी नहीं, युक्ति प्रमाण द्वारा सिद्ध करते हुवे माधुर्य का लक्षण किया है। यथा-"कदाचिदिकञ्चित् किञ्चित् पारमैश्वर्ये व्यक्ते सति सर्वदा मनुष्यरीत्या वर्तमानत्वम्"।

अंगुली के अग्रभाग से रावणादि के हनन की प्रतिज्ञा, अयोध्यावासियों को स्वधाम नयनादि में ऐश्वर्य अभिव्यक्ति स्पष्ट है। ऐश्वर्य प्रभाव प्रधान ही भगवच्चिन्तन मुक्ति साधक देवर्षि नारदजी के द्वारा सिद्धान्तित है यथा—"मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे" गीता में भी भगवान् ने स्वयं ऐश्वर्य विशिष्ट उपासना को ही श्रेष्ठ कहा है यथा—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव समन्विताः ॥

व्यासजी का भी ध्यान ऐश्वर्य विशिष्ट ही है यथा— "तदेव परमं तत्त्वं कैवल्य पद कारणम् ॥" नारदजी का भी ध्यान परतत्त्वपरक ही है यथा :—

परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम। मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥

तत्र—"पितुरङ्कगतं" का ध्यान भगवान् की सरलता सुलभता एवं भक्तवत्सलता आदि अनन्त कल्याण गुणद्योतनार्थ है ॥ ११ ॥

पितुरङ्कगतं राममिन्द्र नीलमणि प्रभम ।
कोमलाङ्गं विशालाक्षं विद्युद्वर्णाम्बरावृतम् ॥ १२ ॥

पितुरङ्कगतम=पिता श्रीचक्रवर्ती दशरथ जी की गोद में विराजमान, इन्द्रनीलमणि प्रभम्=इन्द्रनीलमणि की प्रभा के समान, कोमलाङ्गम्=मृदु शरीर वाले, विशालाक्षम् =विशाल नेत्र, विद्युद्वर्णाम्बरावृतम्=विजली के सदृश श्रेष्ठ वस्त्र को धारण किये हुये रामम् = श्रीरामचन्द्रजी का (ध्यान करे)

विशेष :— भगवान् के ऐश्वर्य का निरूपण करके ऐश्वर्यगौण माधुर्य प्रधान बाल्यावस्थापन्न श्रीरामजी के ध्यान का निर्देश चार श्लोकों द्वारा किया जाता है। इन्द्रनीलमणिप्रभम् दृष्टान्त से श्रीरामजी के विग्रह में चिक्कन, स्निग्ध, अभेद्य, कान्तिमान सूचित किया। चिक्कन रूप उसे कहते हैं जिसके कारण भूषण भी भूषित हों, अर्थात् जिसके बिना मणिभूषण भी शोभित न हो सकें। रूप का अर्थ है जो नयनानन्दजनक हो जिससे तृप्ति न हो। स्निग्ध जिसमें रूखापन न हो, अभेद्य जो वज्र के सदृश हो, व्रण रहित उज्ज्वल अवयवों से युक्त हो। कान्तिमान से सर्वाङ्ग समुदाय की शोभा को कहा गया। इसी को अन्यत्र लावण्य शब्द से भी कहा जाता है। यथा—

मुक्ता फलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते॥

सौकुमार्य, माधुर्य, मार्दवादि गुण भी कोमलाङ्गम् पद से नित्य तथा श्रीरामजी के विग्रह में उपपन्न हैं व्यक्त किया। सौकुमार्य पुष्पहास्य तुल्य कोमलता को कहते हैं, माधुर्य अतृप्ति हेतुक गुण विशेष हैं, भूषणों के हिलने पर भी प्रस्वेद हो जाना मार्दव

कहलाता है। विशालाक्षम विशाल कमल दल के समान जिसमें कुछ रक्तिमा गर्भित है इस प्रकार के श्रीरामजी के नेत्र हैं। विद्युद्वर्णाम्बरा वृतम् से पीताम्बर का परिधान तथा उत्तरीय भी पीतवस्त्र का सूचित हुआ ॥ १२ ॥

भानु कोटि प्रतीकाशं किरीटेन विराजितम् ।
रत्नग्रवेय केयूर रत्न कुण्डल मण्डितम् ॥ १३ ॥

भानुकोटिप्रतीकाशम्=कोटि सूर्य के समान प्रभावान्, किरीटेन=किरीट (शिरोभूषण) विराजितम्=धारण किये हैं। रत्नग्रैवेयकेयूर=रत्नजटित ग्रीवा के भूषण हारादि तथा केयूर=हाथ के भूषण बाजूवन्द आदि, रत्नकुण्डलमण्डितम=रत्नों द्वारा निर्मित कुण्डल कर्णभूषण से सुशोभित हैं।

विशेष :---भानुकोटिप्रतीकाशम् में कोटि शब्द अनन्तवाचक है, अनन्त सूर्य सदृश प्रकाश सम्पन्न अर्थात् अपने परम ऐश्वर्य का प्रकाशन कर रहे हैं, भानुकोटिप्रती-काशम् अन्य भूपणों का भी उपलक्षण है अर्थात् सभी भूषण केवल किरीट हीं नहीं अनन्त सूर्यो के समान प्रकाशित हो रहे हैं। अर्थात् अपने स्वरूपानुरूप किरीटादि विविध भूषणों से भूपित हैं ॥१३॥

रत्न कङ्कणमञ्जीर कटि सूत्रै र लङ्कृतम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ॥१४॥

रत्नकंकणमञ्जीर=रत्नजटित कड़ा, रत्ननिर्मित पायजेब, कटिसूत्रैरलंकृतम्= कटिबन्धन से शोभित, श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कम्= श्रीवत्सचिन्ह, कौस्तुभमणि वक्षस्थल शोभित मुक्ताहारोपशोभितम्=मुक्तामणि के हार से शोभायमान (हो रहे हैं)।

विशेषः—महापुरुषत्व का द्योतक वक्षस्थल में विराजमान पीतलोम के चिह्न विशेष को श्रीवत्स शब्द से कहा जाता है। श्रीवत्स, कौस्तुभमणि का भगवद् विग्रह में नित्य योग है, भगवद् विग्रह से भिन्न इनको अन्यत्र नहीं देखा गया। श्रीरामतापनीय में स्पष्ट है यथा—

इति रामस्य रामाख्या भुवि स्यादथतत्त्वतः ॥१॥ रमन्ते योगिनोनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥ २ ॥

इन दो श्रुतियों द्वारा श्रीराम जी का अनादि रामनाम, एवं परब्रह्म का पृथ्वी में श्रीदशरथ गृह में अवतीर्ण होना प्रसिद्ध हुआ। यथा—

रघुकुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः ॥ राक्षसायेन मरणं यान्ति स्वोद्रेकतोऽथवा। रामनाम भुविख्यातम-भिरामेण वा पुनः ॥

इत्यादि श्रुति कथित कर्मनिमित्तक, गुणनिमित्तक रामनाम प्रसिद्ध हुआ। अपने चिह्न सहित आविर्भूत होने के कारण श्रीराम जी में परब्रह्मत्व उपपन्न हुआ इसी प्रकार ग्रीवा आदि के भूषण भी अपरिमित प्रकाश सम्पन्न हैं ॥१४॥

दिव्यरत्न समायुक्तं मुद्रिकाभिरलंकृतम्।
राघवं द्विभुजं बालं राममीषत्स्मिताननम् ॥ १५ ॥

दिव्यरत्नसमायुक्तम=दिव्य रत्न निर्मित पदिक से युक्त, मुद्रिकाभिरलंकृतम=रत्नजटित अँगूठियों से शोभायमान, राघवम् = रघुकुल में प्रादुर्भूत, द्विभुजम् = दो भुजा वाले, बालम्=बाल्यावस्थापन्न, रामम् =मनोहर, ईषत्स्मिताननम् = थोड़ी मुस्कुराहट से युक्त मुख वाले।

विशेष :– द्विभुजपद से श्रीरामजी का अवर्जनीय रूप तथा परत्व प्रतिपादित हुआ पंचरात्र में यथा :—

स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम् । परन्तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत् त्रयं यजेत् ॥ १ ॥ द्विहस्तमेक वक्त्रश्च शुद्धस्फटिक सन्निभम् । सहस्रकोटि वन्हीन्दु लक्ष्य कोट्यर्क सन्निभम् मरीचिमण्डले संस्थं बाणाद्यायुध लांछितम् । किरीटहारकेयूर वनमाला विराजितम् ॥३॥ पीताम्बरधरं सौम्य रूपमाद्यमिदं हरेः ॥

यहाँ भगवान् के द्विभुज रूप को ही आदि रूप कहा गया है। शिवसंहिता में भी भुजद्वय को ही भुक्ति मुक्ति प्रदाता कहा है। यथा—

रत्नकंकण केयूर शोभिताग्रभुजद्वयम् अखण्डब्रह्मणो नित्याद्राघवान्नित्यविग्रहात् । चिदानन्दात् परानन्दात् साकेतनगराधिपात् ॥ १ ॥ भुक्ति मुक्ति प्रदानार्थं साधकानां पुनः पुनः । आनन्दवाचकः शब्दो विभूतिं संप्रयोजितः ॥२॥ अन्ते विष्णुं विजानीयात् प्रकृतेर्वशभागतम् ॥

इसी प्रकार श्रीसीताजी भी परा तथा ब्रह्मविग्रहात्मिका हैं। जीवों के अनुग्रहार्थ एक ही ब्रह्म दो विग्रह को धारण कर लिया है। यथा—

एवं ज्ञेया परानित्या सीता ब्रह्म सुविग्रहा । सर्व शक्तिमयी धात्री सर्व शक्ति परा तथा ॥१॥ अनुग्रहार्थमस्माकमेक ब्रह्मद्विधागतम् । आनन्दावयवाभिन्ना नित्यलीला सुविग्रहा ॥ २ ॥

भगवान् श्रीराम जी केवल स्त्री पुरुषों के चित्तापहारक नहीं हैं अपितु स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत् के चित्त का अपहरण अपने सौन्दर्य माधुर्य से कर लेते हैं। श्रीअयोध्या जी से वन चले जाने पर श्रीअयोध्याकी दयनीय दशा की एक झाँकी श्रीमद्-वाल्मीकीय रामायण में दर्शित है। यथा :-

विषये ते महाराज महाव्यसन कर्पिताः । अपिवृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पांकुर कोरकाः ॥ १ ॥ उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च । परिशुष्कपलाशानि वनान्युपवनानि च ॥ २ ॥ न च सर्पन्ति सत्त्वानि व्याला न प्रसरन्ति च । रामशोकाभिभूतं सन् निष्कूंज मिवतद्वनम् ॥ ३ ॥ लीनपुष्कर पत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः । सन्तप्तपद्माः पद्मिन्योलीनमीन विहङ्गमाः॥४॥ जलजानि च पुष्पाणि माल्यानि स्थलजान्यपि । न च भान्त्यल्पगन्धीनि फलानि च यथा पुरा ॥१५॥

तुलसी कुन्दमन्दार· पुष्पमाल्यैरलंकृतम् ।
कर्पूरागरुकस्तूरी दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ १६ ॥

तुलसी कुन्दमन्दार पुष्पमाल्यैरलंकृतम् = तुलसीकुन्दमन्दार की पुष्प मालाओं से शोभायमान । कर्पूरागरुकस्तूरीदिव्यगन्धानुलेपनम् = कपूर अगर कस्तूरी चूर्ण के दिव्यगन्ध (अंगराग) से अनुलेपित हैं ।

विशेष :--विद्युद्वर्णाम्बरावृतम् यहाँ से लेकर दिव्यगन्धानुलेपनम् पर्यन्त श्रीरामजी की सुवेषता बतलाई गई । मणिभूषण वसन सुगन्ध कुसुमादि धारण को ही सुवेषता कहते हैं । यथोचित सर्व शृङ्गार उत्तम शृङ्गार सम्पत्ति ही सुवेषता है । भगवान् श्रीरामजी की इस सुवेषता को देखकर महर्षिगण नेत्रों द्वारा उनकी रूप माधुरी कानों द्वारा वचनमाधुरी आदि को भोगने के लिये उत्सुक हो गये । पद्म पुराणे यथा—

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः । दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन्सुविग्रहम् ॥ १६ ॥

योगशास्त्रेष्वभिरतं योगेशं योगदायकम् ।
सदाभरत सौमित्रि शत्रुघ्नैरुपशोभितम् ॥ १७ ॥

योगशास्त्रेष्वभिरतम् =योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः अथवा युज्यतेऽनेनेति योगो मैत्रीरसः तत्प्रतिपादकशास्त्रेष्वभिरतम् =पारङ्गतम्, योगशास्त्र में पारङ्गत, योगेशम् =चित्तवृत्तिनियमन के अथवा मैत्री रस के स्वामी, योगदायकम् =योग प्रदान करने वाले, सदा =सर्वदा भरतसौमित्रशत्रुघ्नैः =भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न द्वारा, उपशोभितम् = समीप में शोभायमान ॥ १७ ॥

विशेष :– तुलसीकुन्दमन्दारादि से अलंकृत दूसरे के द्वारा ही सम्भव है अतः स्वोपाय द्वारा शोभाधायकत्व का वर्णन किया जा रहा है, यम, नियम, आसनादि अष्टाङ्गयोग प्रतिपादक शास्त्र में संलग्न, अथवा मैत्रीरस प्रतिपादक शास्त्र में तत्पर अर्थात् अनालोचित पूर्व वृत्त सुग्रीवादि के साथ मैत्री करके वालिवधानन्तर भी तारा आदि को युक्ति तथा शास्त्र द्वारा निरुत्तर कर देना । तीनों पदों में योग शब्द उभयार्थक है योग-

दायकम् अर्थात् मैत्रीरस प्रदान करने वाले हैं विभीषण संग्रहण समय में भगवान श्रीराम जी स्वयं अपने मुख से विभीषण को अपरित्याग के योग्य निर्णय किया । यथा—

मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथं च न । दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सता मेतदगर्हितम् ॥ वा० यु० का० १८ स० श्लोक ३ ॥

मैत्रीरस के विशेष विज्ञत्व के उदाहरण को श्लोकार्ध में व्यक्त किया जाता है श्रीभरत लक्ष्मण शत्रुघ्न से सदा शोभित हैं अर्थात् क्षण भर भी नहीं छोड़ते अतएव श्री-लक्ष्मणजी के त्याग के अनन्तर श्रीलक्ष्मण जी के वियोग को न सहते हुये, अपने साथ में गमनोत्सुक श्रीअयोध्या वासियों को अपने धाम ले गये ॥ १७ ॥

विद्याधर सुराधीशैः सिद्धगन्धर्व किन्नरैः ।
योगीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानमहर्निशम् ॥ १८ ॥

विद्याधरसुराधीशैः = विद्याधर इन्द्र द्वारा, सिद्धगन्धर्व किन्नरैः = सिद्ध गन्धर्व किन्नरों द्वारा, योगीन्द्रैः = श्रेष्ठ योगियों द्वारा, नारदाद्यैश्च = नारदादि देवर्षियों द्वारा अहर्निशम् = दिन रात, स्तूयमानम् = स्तुति की जा रही है ।

विशेष :—विद्याधरादि भगवान् श्रीराम जी की गान्धर्व क्रीडा से मोहित होकर निरन्तर सन्निधि में वर्तमान हैं । यथा—गान्धर्वेषु भुविश्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः । वा० अयो० । इस श्लोक में भुवि पद तीनों लोक का उपलक्षण है । समाधिगम्य श्रीराम-तत्त्व को लौकिक प्रत्यक्षग्राह्य जानकर कृतकृत्य होकर योगीन्द्र दिनरात स्तुतिकर रहे हैं ॥१८

विश्वामित्र वशिष्ठादि मुनिभिः परिसेवितम् ।
सनकादि मुनि श्रेष्ठैः योगिवृन्दैश्च सेवितम् ॥१९ ॥

विश्वामित्र वशिष्ठादि मुनिभिः = विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि ऋषियों द्वारा, परिसेवितम् = समन्तात् सेवित, सनकादि मुनि श्रेष्ठैः = सनकादि मुनि श्रेष्ठ हैं जिनमें उनके द्वारा तथा योगिवृन्दैश्च = योगि समुदाय से सेवित ।

विशेष :—योगिवृन्द से सेवित अर्थात् मनन निदिध्यासन द्वारा अवश्य साक्षात् करने के योग्य जो परतत्त्व है वह आज श्रीराम रूप से भक्तजनों को अपने सौल-भ्यगुण से चर्मचक्षु का विषय हो गया है अतः सुखसेव्य जानकर सर्वात्मना सर्वतोभाव से सेवा तत्पर हैं ॥ १९ ॥

रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेद विशारदम् ।
मङ्गलायतनं देवं रामं राजीव लोचनम् ॥ २० ॥

रामम् = योगियों के अन्तःकरण में रमण करने वाले, रघुवरम् = रघुवंशियों में श्रेष्ठ, वीरम् = पराक्रमशाली, धनुर्वेदविशारदम् = अस्त्रशस्त्र के ग्रहण धारण संचा-

लन में विशेष कुशल, अर्थात् कब किस अस्त्र का प्रयोग अमोघ होता है इसमें विशेष चातुर्य सम्पन्न। मङ्गलायतनम्—मङ्गल के स्थान अर्थात् सभी को मङ्गल प्रदान करने वाले, देवम् देदीप्यमान, राजीवलोचनम् =कमलदल के सदृश नेत्र वाले, राम नाम, से ध्यान।

विशेष :--रघुवरं वीरमित्यादि विशेषणों द्वारा श्रीरामजी की किशोरावस्था व्यक्त हो रही है अतः यह ध्यान किशोरावस्था का है, किशोरावस्था पन्द्रह वर्ष के पूर्व ही होती है। यथा—

कौमारं पञ्चमाद्यान्तं पौगण्डमो दशमावधिः। कैशोरमापञ्चदशाद् यौवनन्तु ततः परम् ॥ २० ॥

सर्वशास्त्रार्थ त त्त्वज्ञमानन्दकर सुन्दरम् ।
कौशल्यानन्दनं रामं धनुर्बाणधरं हरिम् ॥ २१ ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञम् = सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ तथा तत्त्वों के ज्ञाता, आनन्दकर सुन्दरम् = आनन्दप्रद तथा सुन्दर, कौशल्यानन्दनम् = श्रीकौशल्या जी के आनन्ददाता, हरिम् = दुःख पापनाशक, धनुर्बाणधरम् = धनुष तथा बाण के धारण करने वाले, रामम् = श्रीरामचन्द्र जी को।

विशेष :- सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञम् - सर्वेषां शास्त्राणामर्थं तत्त्वञ्च जानातीत्यर्थः, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, इन छः अङ्गों सहित वेद के अर्थ एवं तत्त्व के ज्ञाता, पूर्व मीमांसा, (धर्मशास्त्र) उत्तरमीमांसा (वेदान्त) न्याय, वैशेषिक, सांख्य-योगके अर्थ तथा सारांश के ज्ञाता। आनन्दकर सुन्दर का भावहै स्वसौन्दर्य द्वारा आनन्ददाता, कौशल्यामानन्दयति इति कौशल्यानन्दनम् न केवल कौशल्या अम्बा को ही आनन्द देते हैं अपितु सम्पूर्ण चर, अचर जगत् को, इस आशय से रामम्-रूपौदार्य गुणों द्वारा सबको रमण करने वाले अर्थात् आनन्द प्रद हैं। आगे जगत् को आनन्द देने वाले श्रीरामजी को नमस्कार किया जायेगा। यथा—"नमोऽस्तु रामदेवाय जगदानन्दरूपिणे। हरिम् पद से रूप औदार्य आदि गुणों से सबकी दृष्टि तथा चित्त के अपहरणकर्त्ता सूचित है अथवा 'दुःखानि पापानि स्वभक्तानाम त्रिधा पर्यन्तं हरतीति हरिः", यथा—"रूपौदार्य गुणैः सर्वदृष्टिचित्तापहारकम्" ॥२०॥

एवं सञ्चिन्तयेद् विष्णुं यज्ज्योतिरमलं शिवम् ।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा मुनिवर्य्यः स नारदः ॥ २२ ॥

एवम् = उपरिकथित रूप, विष्णुम् = व्यापक, या विशुद्ध, यज्ज्योतिः= जिसकी ज्योति, अमलम् =निर्मल, प्रकृतिगुण रहित, शिवम् कल्याणकर है (उसको) सञ्चिन्तयेद् = सम्यक् ध्यान करे--समुनिवर्य =प्रसिद्ध, मुनियों में श्रेष्ठ, नारदः =नारदजी प्रहृष्टमानसोभूत्वा =प्रसन्नचित्त होकर (श्रीरामजी की स्तुति की)

विशेष :- उपक्रम में 'यज्ज्योतिरमलं शिवं' तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपद कारणम्' कहा, अर्थात् सच्चिदानन्दार्थक राम पद वाच्य ही मुक्ति देने वाले हैं कल्याणगुणाकर तथा हेय गुण रहित हैं मुक्ति कामना से उन्हीं का ध्यान करे। श्रीमद्भागवत में भी परतत्त्व को ही मोक्ष कामनया भजे, यथा—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्ति योगेन यजेत् पुरुषं परम् ॥

परतत्त्व श्रीरामजी ही हैं, उपसंहार में धनुर्बाणधरं कौशल्यानन्दनम् आदि विशेषण द्वारा ध्येय एवं परतत्त्व माना है। श्रीअयोध्याजी के मध्य में विराजमान रत्न मण्डप के बीच कल्पवृक्ष के नीचे रत्न सिंहासन में पद्मासनस्थ, श्री दशरथ पुत्र के रूप में आविर्भूत अनन्त सूर्य तेज सम्पन्न, पिता की गोद में विराजमान इन्द्रनीलमणि आभा के सदृश, कमनीयविग्रह, अनन्तसूर्यकान्तिकमनीयरत्नकिरीट से सुशोभित, नाना विध रत्न जटित भूषणों से अलंकृत, श्रीवत्स कौस्तुभमणि से शोभायमान, तुलसी कुन्दमन्दारादि की पुष्प मालाओं से अलंकृत द्विभुज किञ्चिन्मुस्कुराहट से युक्त, कर्पूर अगरु कस्तूरी निर्मित अङ्गराग से अनुलिप्त, श्रीभरतादि भाइयों से शोभित, नृत्यगान विशारद विद्याधर तथा नारदादि द्वारा सतत् स्तूयमान, विश्वामित्र वशिष्ठादि मुनियों से सेवित मुनि श्रेष्ठ सनकादि द्वारा परिसेवित, धनुर्बाणधारी, राजीवलोचन, मङ्गलायतन, सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ, सर्वानन्दकर, कौशल्यानन्दन, सर्वदुःखहरण श्रीरामजी का ध्यान अपने-२ अभीष्ट विग्रह द्वारा करे॥ २२॥

सर्वलोक हितार्थाय तुष्टाव रघुनन्दनम्।
कृताञ्जलि पुटो भूत्वा चिन्तयनद्भुतं हरिम् ॥ २३॥

सर्वलोकहितार्थाय=सम्पूर्ण लोक के कल्याणार्थ, कृताञ्जलिपुटः=दोनों हाथ की अञ्जलि, भूत्वा बांधकर, अद्भुतम्=अघटित घटनाघटित अचिन्त्य पराक्रमशाली, हरिम्=भगवान् का चिन्तयन=चिन्तन करते हुये रघुनन्दनम=रघुकुल को आनन्दित करने वाले श्रीरामजी की, तुष्टाव=स्तुति की।

विशेष :- नारदजी कृत श्रीरामस्तवराज द्वारा सब लोग कृतार्थ हो जांय इस लिये यह स्तुति श्रीरामजी की गयी। सर्वलोकहितार्थायसर्वे च ते लोकाः सर्वलोकाः तेषां हितार्थाय=कल्याण सम्पादनाय, तुष्टाव=परतत्व परब्रह्म जानकर श्रीरामजी की स्तुति की। न केवल शास्त्रजनित परोक्ष ज्ञान द्वारा किन्तु अद्भुतं हरिं चिन्तयन्=मननिदिध्यासात्मिका परभक्ति द्वारा साक्षात देखकर अर्थात् श्रीरामजी ही परात्परतरतत्त्व हैं यह जानकर स्तुति की। "कृताञ्जलिपुटो भूत्वा" से लेकर "अनन्तवीर्यं रामं ददर्श" तक पाँच शपथ करके, अर्थात् श्रीरामजी ही परतत्त्व हैं यथा--

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतदिहोच्यते । रामः सत्यं परब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते ॥

कृताञ्जलि पुटो भूत्वा का "रामं ददर्श" इस दर्शन क्रिया में अन्वय है । "कृतः वद्धः अञ्जलि पुटो येन स" "अञ्जलिः परमामुद्रा सद्योदेवप्रसादिनी" अर्थात् श्रीरामजी की प्रसन्नता शीघ्र हो इसलिये कृताञ्जलि होकर स्तुति की ॥ २३ ॥

यदेकं यत्परं नित्यं यदनन्तं चिदात्मकम् ।
तदेकं व्यापकं लोके तद्रूपं चिन्तयाम्यहम् ॥ २४ ॥

यदेकम् = जो एक है, यत्परम् = जो सबसे परे हैं, नित्यम् = सदा विद्यमान् यदनन्तम् = जिसका अन्त नहीं है, चिदात्मकम् = स्वरूप तथा गुण द्वारा स्वप्रकाश तथा ज्ञान के आकर हैं । तदेकम् = मुख्य हैं लोकव्यापकम् = लोक में व्यापक हैं अर्थात् लोक के बाहर भी हैं, तद्रूपं रूप्यते निरूप्यत इतिरूपम् परमतत्त्वम्, अहं चिन्तयामि अर्थात् उस परमतत्त्व का ध्यान करता हूँ ।

विशेष :-- चिन्तन का प्रकार कहा जा रहा है "यदेकम् अद्वितीय ब्रह्म" जिसे श्रुतियां :—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥ "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्यनाम महद्यशः ॥

इन विशेषणों के द्वारा निरूपण करती हैं । दो हाथ से लेकर हजार हाथ पर्यन्त परब्रह्म भगवान् श्रीरामजी के ही अवतार हैं श्रीरामजी अवतारी हैं, अवतार की अपेक्षा अवतारी का पर होना स्वाभाविक है यथा—

रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्यङ्गांस्त्रादिकल्पना । द्विचत्वारि षडष्टासां दश द्वादश षोडश ॥ अष्टादशमी कथिता हस्ताः शङ्खादिभियुताः सहस्रान्तास्तथा तासां वर्णवाहन कल्पना ॥

जितने भी परब्रह्म श्रीरामजी के विग्रह श्रुति स्मृतियों में सुने जाते हैं वे सब उन्हीं के अवतार हैं । श्रीमद्भागवत में यथा :–

अवताराह्यसंख्याता हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः । यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥

जो नित्य हैं कालपरिच्छेद शून्य हैं अनन्त अर्थात् वस्तु देश परिच्छेद रहित हैं । इस श्लोक में एकं परं नित्यं मनन्तं चिदात्मकम् व्यापकम पदसमुदाय का परब्रह्म भगवान् श्रीरामजी में ही पर्यवसान होता है ॥ २४ ॥

विज्ञान हेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञान रूपं स्वसुखैक हेतुम् ।
श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं परात्परं राममहं भजामि ॥ २५ ॥

विज्ञानहेतुम्=विज्ञान के कारण अर्थात् भगवद् विमुख होने के कारण जीव का जो धर्मभूत ज्ञान नष्ट प्रायः हो चुका है उसे अपने सम्मुखीन करके ज्ञान का प्रकाश करते हैं। विमलायताक्षम्=विमल तथा दीर्घनेत्र। प्रज्ञानरूपम्=संकोच विकाश रहित ज्ञान के आधारभूत। स्वसुखैकहेतुम्=ब्रह्मानन्द रूप सुख के एकमात्र कारण अथवा स्वीय साक्षात्कार विषयक सुख के मुख्य कारण। हरिम्=दुःख तथा उसके कारण पाप के हरण करने वाले। आदिदेवम्=त्रिपाद्विभूति तथा लीला विभूति में, स्वेच्छक्रीड़ापरायण अर्थात् उभयविभूति नायक। परात्परम्=सर्वावतारी, परावर। श्रीरामचन्द्रं= श्रीरामचन्द्र नाम है जिनका, रामम्=रामजी को, अहं भजामि, साक्षात्कार के लिये ध्यान कर रहा हूँ। परमतत्त्व साकार हैं, रामनाम है, आदि देव हैं इसके ज्ञापनार्थ विशेषण दिये जा रहे हैं:-

विशेषः—विज्ञानहेतुम्=विशेष ज्ञान के कारण अर्थात् अपने अनादि कर्म द्वारा जीव भगवान् से विमुख होकर ("ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी" होते हुये भी "सो माया बश भयउ गोसाईं। बँधेउ कीर मरकट की नाईं ॥") अपना धर्मभूत ज्ञान नष्ट कर दिया है अपने पाप कर्म द्वारा भगवान् की प्रपत्ति नहीं किया। यथा—

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ा प्रपद्यन्ते नराधमाः। माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

उन जीवों को सामुख्य प्रदान करके विशुद्ध बुद्धियोग देते हुये अपने को प्राप्त करा देते हैं। यथा—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्। ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजन्तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वता ॥

विमलायताक्षम्=विमले उज्ज्वले आयते कर्णपर्यन्तमक्षिणी यस्य तमितिपरम तत्त्व का साकार रूप तथा उपासक के दुःखश्रवण योग्यत्व को व्यक्त किया। प्रज्ञानरूपम्=प्रशब्द से परिच्छेद रहित सूचित हुआ, अर्थात् परिच्छेद रहितं यज्ज्ञानं चित्स्वप्रकाशं तदेव रूपं विग्रहोयस्यतम्। स्वस्वरूपभूत जो परमात्मरूप है उससे अभिन्नरूप अर्थात् देहदेही विभाग रहित सच्चिदानन्द विग्रह। स्वसुखैकहेतुम्=स्वं भगवदीयं यत्सुखं साक्षात्कार लक्षणं तस्य एकं मुख्यं हेतुं कारणम् तत्प्रदमित्यर्थः अर्थात् दर्शनाकांक्षी भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले, इससे स्वदर्शनदाता सूचित किया। यथा—नायमात्मा

प्रवचनेन लभ्यो न मेधया वहुना श्रुतेन। य मेवैषवृणुते स तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥ अथवा स्वसुखं ब्रह्मानन्दलक्षणं तस्यैकं मुख्यं हेतुम्, इससे ब्रह्मानन्द कामुकों को भी श्रीरामजी ही उपाय हैं यह व्यक्त हुआ, यथा—

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यत्परब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः। यश्चाखण्डैक रसात्मा यश्च ब्रह्मानन्दामृतं यस्तारकं ब्रह्म यो ब्रह्माविष्णुरीश्वरो यो ब्रह्माण्डस्यांतर्वहिर्व्याप्नोति यो वासुदेवो यो महाविष्णुः यः सर्व देवात्मा भूः॥

श्रीरामतापनीय के इस अन्तिम मन्त्र द्वारा नारायणादि रूपी होने के कारण सर्वावतारी ज्ञापित हुआ॥ २५॥

कविं पुराणं पुरुषं पुरस्तात् सनातनं योगिनमीशितारम्।
अणोरणीयांसमनन्तवीर्यं प्राणेश्वरं राममसौ ददर्श॥ २६॥

कविम्=जो सर्वज्ञ, पुराणम्=प्राचीन, पुरुषम्=परमपुरुष, पुरस्तात्=पहिले भी वर्तमान। सनातनम्=अनादि, योगिनम्=योग वाले। अथवा अप्राप्त के प्रापण रूप अर्थात् अपने भक्त के अभीष्टपूरक। ईशितारम्=ईश्वर से भी स्वामितया आराध्यमान् अथवा चित्तत्त्व, अचित्तत्त्व के नियन्ता। अणोरणीयांसम् = अणुपरिमाण से भी अति सूक्ष्म। अनन्तवीर्यम्=असंख्येयपराक्रम। प्राणेश्वरम्=भक्तों के प्राण से भी प्रिय। रामम्=सच्चिदानन्दार्थ राम पद से अभिधीयमान परब्रह्म दशरथ पुत्र के रूप में आविर्भूत, असौ=श्रीनारद जी, ददर्श=देखा।

विशेष:—झटिति देवप्रसादिनी अञ्जलि को बाँधकर दर्शनकामनया नारदजी श्रीरामजी का ध्यान कर ही रहे थे कि श्रीरामजी का साक्षात्कार हो गया। वे श्रीरामजी कैसे हैं:— कविम्=सर्वज्ञ, "यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञान मयं तपः" आदि श्रुति प्रसिद्ध। पुरुषम्—

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किञ्चित्साकाष्ठा सा परागतिः॥

इस श्रुति द्वारा वर्णित परम पुरुष। परम पुरुष में पुराणत्व कारण है पुराण हैं अतएव परमपुरुष। पुरस्ताद् पूर्व में भी स्थित हैं यह भी परमपुरुषत्व का ही वीज है। सनातनम्=नित्य, अनादि। अणोरणीयांसम्= अणु परिमाण वाले जीवात्मा के भी व्यापक, यथा—

यत् किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा। अन्तर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।

अनन्तवीर्यम्=असंख्येय पराक्रम श्रीरामजी का विभीषण शरणागति के समय श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण में प्रसिद्ध है। यथा—

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किं मेष रजनीचरः। सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुमशक्तः कथं च न ॥ पिशाचान्दानवान् यक्षान् पृथिव्यां ये च राक्षसाः। अंगुल्यग्रेणतान् हन्याभिच्छन् हरिगणेश्वर।

पृथ्वी के समस्त राक्षसों को अंगुलि से नहीं अपितु उसके अग्रभाग से हनन् ही श्रीराम जी का असंख्लेय परीक्रम है। प्राणेश्वरम=सभी इन्द्रियों को छान्दोग्य में प्राण शब्द से कहा गया है उनके ईश्वर अर्थात् नियन्ता अथवा प्राण के भी प्राण जीवनप्रद। यथा:—

चक्षुपश्चक्षुः श्रोतस्य श्रोत्रमुत्प्राणस्य प्राणम्।

"रामम् यदेकं यत्परमित्यादि परतत्त्वबोधक" पचीस विशेषणों से विशेषित परात्पर रामपद वाच्य "रमन्ते योगिनोऽनन्ते" इत्यादि श्रुत्युक्त श्रीरामजी को श्रीनारदजी ने देखा ॥ २६ ॥

श्रीनारद उवाच:—

नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम्।
कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम् ॥ २७ ॥

श्रीनारद जी बोले—

नारायणम्=जो नारायण, जगन्नाथम्=संसारवर्त्ति प्राणियों के द्वारा अर्थ, धर्म, काम मोक्ष भगवत्प्राप्ति रूप पुरुषार्थप्राप्ति के लिये प्रार्थनीय। अभिरामम्=सर्वांग-रमणीय अपने दर्शनमात्र से समस्त स्त्री पुरुष को आनन्द देने वाले। जगत्पतिम्=पति के सदृश धर्मान्तर का परित्याग करके सर्वतोभावेन भजन करने के योग्य। कविम्=सर्वज्ञ। पुराणम्=सनातन। वागीशम्=सरस्वती प्रेरक अथवा सरस्वती कान्त। रामम्=रमणीय विग्रह वाले, स्वरूप दर्शन मात्र से वीतराग महर्षियों के मन को भी मोह लेने वाले। दशरथात्मजम्=चक्रवर्त्ति दशरथ जी के पुत्र रूप से प्रसिद्ध।

विशेष:—नारायणमादि द्वितीयान्त विशेषण वाचक पदों का विशेष्यवाचक रघूत्तमम पद के साथ अन्वय है और रघूत्तमम् पद का प्रणमामि क्रिया पदके साथ अन्वय है, "मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम" कीदृशं रघूत्तमम् नारायणम्=सर्वतत्त्वों के अन्दर वर्तमान। यथा—

नराज्जातानि तत्वानि नाराणीति विदुर्बुधः। तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

नर से उत्पन्न होने वाले तत्त्व को नाराणि और वह है अयन जिसका उसे नारायण कहते हैं। अथवा—"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। तायदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ जल अथवा नरसुनु (श्रीरामजी) को नार शब्द से कहा जाता

है और वह जिसका अयन निवास है उसे नारायण कहते हैं। अथवा कारणार्णव (क्षीर समुद्र) शायी को नारायण शब्द से कहा गया है श्रीमद्भागवते यथा:-

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतु हेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्। यन्नाभि जातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माविरासीद् यत एष लोकः॥

श्रीमद्भागवत में अन्यत्र भी यथा—नारायणस्त्वं नहि किं नरभूजलाशयाद्॥ नरशब्द (श्रीराम) वाच्य का ही नारायणावतार अवगत हुआ। विशेषण वाचक नारायण का विशेष्य श्रीराम पद को श्रीनारद जी ने कैसे कहा यह शंका उत्थित हुई इसका उत्तर श्रीरामस्तवराज भाष्यकार स्वामी श्रीहरिदास जी महाराजकी गृहीतयुक्ति द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यथा- "पशुनायजेत्" यहाँ पर पशुत्व जाति नहीं है अपितु लोमलाङ्गूल वाले को पशु कहते हैं इससे गर्दभादि का भी यज्ञ में आलभन प्राप्त हुआ। "छागो वा मन्त्रवर्णात्" इस मन्त्र में याग का साधनभूत पशु छाग ही निर्णीत हुआ इसलिये यज्ञ में छाग का ही आलभन होता है। उसी प्रकार नर हरि नारायणादि विशेषण वाचक पदों का भी कहीं विशेष्यवाचक पदों में पर्यवसान होगा। अतः तत्सन्निहित सर्वोत्कृष्ट राम शब्द वाच्य परमेश्वर में ही पर्यवसान युक्तियुक्त है। अथवा कारणत्व हरिनरादि शब्द सर्व शाखा प्रत्यय न्यायेन परमतत्त्व सर्ववेदान्तगीत रामाख्य ब्रह्म में ही पर्यवसित हैं। पुनः "ब्रह्मणोरूपकल्पना" इत्यादि मन्त्र द्वारा श्रीरामाख्य ब्रह्म का ही नारायणादि अवतार भी कहा गया है। श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण में श्रीरामजी का ही नारायणावतार ब्रह्मा जी ने कहा है यथा—महार्णवे शयानोऽप्सुमां त्वं पूर्वमजीजनः॥ अतः नारायणादि श्रीरामजी के ही अवतार हैं। इसलिये नारायणादि विशेषणवाचक पद विशेष्यवाचक श्रीरामपद के साथ ही अन्वित होना श्रीनारद जी के द्वारा ज्ञापित हुआ। अभिरामम्=सर्वाङ्ग मनोहर यथा--"रूपौदार्य गुणैः पुंसां दृष्टिचित्ता पहारकम्" श्रीमद्वाल्मीकीय द्वारा तथा पद्मपुराण द्वारा सर्वोत्कृष्ट सुन्दरता वर्णित है यथा-- "दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमिच्छन सुविग्रहम्" "अभिरामेण वा पुनः" इस श्रीरामतापनीय मन्त्र द्वारा भी श्रीरामजी को सर्वलोक मनोहर कहा गया है। यथा--श्रीरामस्तवराज में भी भगवान् को आनन्द प्रदान करने वाला कहा गया है। यथा- -नमोऽस्तुरामदेवाय जगदानन्दरूपिणे। जगत्पतिम्= पति के सदृश धर्मान्तर का त्याग करके सर्वतोभावेन भजन करने के योग्य। श्रीमद्भागवत में भगवान् ने स्वयं अपने मुख से प्राकृत पति के त्याग में पातकी बतलाया है। यथा--

दुश्शीलो दुर्भगोवृद्धो जडो रोग्यधनोऽपिवा। पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥

अतः नित्यपति श्रीराजी का सर्वदा भजन करना चाहिये। भागवते यथा--"स वै पतिः स्यादकुतो भयः" "स्वयं भयातुरं पातु जनं समन्ततः॥" सामान्य धर्म का त्याग

करके धर्ममूल भगवान की ही एकमात्र शरण ग्रहण भगवान को अभीष्ट है। गीता में यथा –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

कविम्=सर्वज्ञ। यथा--यः सर्वज्ञः सर्वचित्। परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च। इत्यादि श्रुति गीयमान ज्ञानादि सम्पन्न। न कहिये ब्रह्मादि भी जगत्पति तथा कवि सुने जाते हैं। इस पर कहा-पुराणम् अर्थात् सबसे प्राचीन ब्रह्मादि में सर्व प्राचीनत्व अप्रसिद्ध है। यथा--

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं हो देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये ॥ १ ॥ "हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभयासंयुनक्तु ॥

ब्रह्म गायत्री प्रतिपादित अर्थ से मुझे संयुक्त करें। "धियो यो नः प्रचोदयात" गायत्री प्रतिपाद्य भी भगवान् श्रीरामजी ही हैं यथा-भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथमिति ॥२७॥

राजराजं रघुवरं कौशल्यानन्दवर्द्धनम ।
भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥ २८ ॥

राजराजम्=राजाओं के भी राजा अर्थात् सर्वराजेश्वर, रघुवरम् रघुवंशियों में श्रेष्ठ कौशल्यानन्दवर्द्धनम्=माता कौशल्या के आनन्द बढ़ाने वाले भर्गम्=रविबिम्ब के प्रकाशक ज्योतिस्स्वरूप। वरेण्यम्=सभी तेजों में प्रकाशक होने के कारण श्रेष्ठ। विश्वेशम्=सब की बुद्धि के ईश अर्थात् शुभाशुभकर्माधीन प्रेरक, रघुनाथम्=रघुवंशियों के नाथ अर्थात् पालक। जगद्गुरुम्=प्रजा के अभ्युदय निःश्रेय के उपदेष्टा। (उनको मैं प्रणाम करता हूँ)।

विशेष :– "मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम्" इस दूरस्थ अगले श्लोक के क्रिया पद प्रणमामि में सभी द्वितीयान्त पदों का अन्वय है। राजराजम सर्व राजेश्वर, रघुवरम्, रघुवंश श्रेष्ठ, स्वसमान, तथा अधिक कोई न होने के कारण कौशल्यानन्दवर्द्धन हैं। परब्रह्म बुद्धि से मुमुक्षुजन सेव्य हैं। ब्रह्म गायत्री प्रतिपाद्य हैं। भर्गम रविबिम्ब के प्रकाशक तेजस्स्वरूप हैं। वरेण्यम्--सभी तेजो के प्रकाशक होने के कारण सबसे श्रेष्ठ हैं। आगे कहा गया है यथा--ज्योतिषां पतये नमः। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में भी भगवान् श्रीराम जी को सूर्य के भी सूर्य कहा गया है यथा--सूर्यस्यापि भवेत्सूर्योह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः। श्रीरामस्तवराज में भी बार बार गायत्री प्रतिपाद्य तथा ब्रह्मगायत्री वाच्य दृढ़ किया गया है यथा--

आदित्यरविमीशानमादित्य मण्डल गतम्। सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीता समन्वितम् ॥

पञ्चरात्र में भी द्विभुज भगवान् श्रीरामजी को ही गायत्री वाच्य स्वीकार किया गया है यथा—

द्विहस्तमेकवक्त्रञ्च शुद्ध स्फटिक सन्निभम् । सहस्रकोटि वह्नीन्दु लक्ष-कोटयर्कसन्निभम् ॥१॥ मरीचिमण्डले संस्थं बाणाद्यायुध लाञ्छितम् । किरीट हार केयूर वनमाला विराजितम् ॥ २ ॥ पीताम्बरधरं सौम्यं रूप माद्यमिदं हरेः ।

इन्हीं भगवान् श्रीरामजी को ही श्रुतियाँ गायत्री प्रतिपाद्य तथा सब जीवों को ज्ञान देने वाले कहती हैं । यथा—तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी । एवं "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं हो देवमात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ विश्वेशम्—अभ्युदय निःश्रेय साधन में सबकी बुद्धि प्रेरक होने के कारण बुभुक्षु मुमुक्षु सर्वजन चिन्तनीय । इस कथन के द्वारा ब्रह्मगायत्री के धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्" इस अंश के प्रतिपाद का निर्देश किया गया । इस प्रकार सर्वेश्वर होते हुये भी कारुण्यपारवश्येन धर्मिष्ठाग्रगण्यचक्रवर्ति नरेन्द्र के घर में आविर्भूत होकर इस लोक के सुख को प्रदान किये । यह "रघुनाथं जगद्गुरुम्" इन दो पदों के द्वारा व्यक्त किया ॥ २८ ॥

सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं जानकी वल्लभं विभुम् ।
सौमित्रि पूर्वजं शान्तं कामदं कमलेक्षणम् ॥ २६ ॥

सत्यम=सदा एक रस से वर्तमान, सत्यप्रियम्=सत्य वचन वल्लभ, जानकी वल्लभम् =महारानी श्रीजानकीजी के प्रिय, अथवा श्रीजानकी जी में प्रेम है जिनका । विभुम् =व्यापक । सौमित्रि पूर्वजम् =सुमित्रा के पुत्र श्रीलक्ष्मणजी के पूर्व में आविर्भूत अर्थात् लक्ष्मणकुमार के ज्येष्ठ भ्राता । शान्तम् =शान्त स्वभाव परमानन्द स्वरूप । कामदम् =भक्त की कामनाओं को पूर्ण करने वाले । कमलेक्षणम् =कमल के सदृश प्रसन्न उज्ज्वल तथा अरुणिमागर्भित नयन वाले ।

विशेष :– इस श्लोक में श्रीरामजी के रूप को नित्य कहा जा रहा है । सत्यम् =तीनों काल में जिसका नाश न हो अर्थात् सदा एकरस । अथवा नाम रूप विभागानार्ह जिसे श्रुतियाँ "द्विहस्तमेकवक्त्रञ्च ।

एवं-सहस्रकोटि वह्नीन्दु लक्ष कोटयर्क सन्निभम् । मरीचिमण्डले संस्थं रूपमाद्यमिदं हरेः ॥

ऐश्वर्य रूप से नित्यविभूति में विराजमान, लीला विभूति में ऐश्वर्य छिपाकर माधुर्यरूप से द्विभुजादि होकर मानवीय मर्यादा का अनतिक्रमण करके विराजमान । सत्यप्रियम् =सर्वदा सत्य बोलने वाले, बाल्मीकीय रामायण में यथा— अनृतं नोक्त पूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन । सत्यवादी भगवान् श्रीरामजी सदा श्रीमहारानी जी के साथ ही रहते हैं, और उनके भजन के बिना किसी प्रकार भी प्रसन्न नहीं होते । मन्त्र जपादि द्वारा

प्रसन्न होकर भी भावनामय अपने स्वरूप को नहीं दिखलाते अर्थात भक्त को आनन्दप्रद नहीं होते । यथा--

चकाराराधनं तस्य मन्त्र राजेन भक्तितः । कदाचिन्न्द्री शिवोरूपं ज्ञातु मिच्छुहरेः परम ॥१॥ दिव्यं वर्ष शतं वेदविधिना विधिवेदिना । जजाप परमं जाप्यं रहस्ये स्थित चेतसा ॥ २ ॥ प्रसन्नोऽभूत्तदादेवः श्रीरामः करुणाकरः । मन्त्राराध्येन रूपेण भजनीयः सतां प्रभुः ॥ ३ ॥ द्रष्टुमिच्छमि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम् । अह्लादनीं परां शक्ति स्तूयाः सात्वत सम्मताम् ॥ ४ ॥ तदाराध्य-स्तदारामस्तदधीनस्तया विना । तिष्ठामि न क्षणं शंभो जीवनं परमं मम ॥ ५ ॥

यह रहस्य श्रीराम जी के द्वारा कथित है अतः श्रीरामजी का वशीकरणोपाय तथा आनन्द प्रदत्व श्री नारद जी प्रकाशित कर रहे हैं, जानकी वल्लभमिति, जानक्याः वल्लभम् या जानकी वल्लभा यस्य ये दोनों अर्थ अभीष्ट हैं अतः भगवत्प्रसाद कामुकों को दोनों सरकार का भजन करना चाहिये । दोनों सरकार का कभी वियोग भी नहीं होता । वाल्मीकीय रामायण में यथा—अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा-- अनन्या राघवेणाहं प्रभा चन्द्रमसो यथा । न कहो कि जब दोनों तत्त्व अभिन्न हैं तब एक को ही आराधना से दोनों की आराधना सिद्ध हो गई । यह नहीं कह सकते "तदाराध्यः" इस श्लोक का अर्थ तया सीतया सह आराध्यः इति तदाराध्यः अर्थात श्रीजानकी प्रसन्न-ताधीन श्रीरामजी की प्रसन्नता है । अर्थात् श्रीरामजी की आराधना श्रीजानकी जी की आराधना के बिना नहीं हो सकती । अतएव श्रीजानकी जी को पुरुषकार के रूपमें स्वीकार किया गया है । इतिहास श्रेष्ठ श्रीवाल्मीकीय रामायण में श्रीरामजी से श्रीजानकी जी का प्रथम वियोग अपनी कृपा प्रकाशनार्थ है । मध्यम विश्लेष पारतन्त्र्य प्रकाशनार्थ है और अन्तिम विश्लेष अनन्यार्हत्व प्रकाशन के लिये है । देव स्त्रियों को कारागार से मुक्त करने के लिये आप स्वयं रावण के कारागार में जाकर दव देवदिव्यमहिषी होते हुये भी कारागार वास निमित्तक नीचता को न देखकर "सीतायाश्चरितं महत्" महर्षि कथित अपने महच्चरित्र को प्रकट किया । जैसे बालक के कूप में गिर जाने पर उसके साथ कूदकर निकालने वाली माता । निरवधिक वात्सल्य गुण का प्रकाशन इस प्रथम विश्लेष से ज्ञापित हुआ । यही पुरुषकार वैभव है यथा--

मत्प्राप्तिं प्रति जन्तूनां संसारे पततामधः । लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ॥

श्रीवचनभूषण में प्रथम विश्लेष को कृपा प्रकाशनार्थ ही कहा गया है यथा :- लक्ष्म्याः प्रथम विश्लेषः स्वकृपा प्रकाशनार्थम् ॥ ६ ॥ गर्भिणी अवस्था में श्रीजानकी जी का मध्यम विश्लेष भगवदधीनत्व को प्रकाशन करता है चाहे आप अन्तःपुर में रखें या तपोवन में छोड़ दें मैं आपकी इच्छा की दासी हूँ, यथा---पतिर्हि दैवतं नार्याः पतिर्बन्धुः

पतिर्गतिः प्राणैरपि प्रियं तस्मान् भर्तुः कार्यं विशेषतः ॥ अन्तिम विश्लेष से श्रीरामजी का अनन्याहर्त्व प्रकाशित है। काषायवस्त्र को धारण करके श्रीरामजी के सामने उपस्थित श्रीजानकी जी के विषय में महर्षि वाल्मीकि द्वारा शपथ खाने पर साञ्जलि अधोमुखी होकर स्वयं शपथ ग्रहण करने लगीं। यथा :-

यथाहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १ ॥

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ २ ॥ श्रीजानकीजी के इन वचनों को सुनकर पृथ्वी देवी अपने हाथों से दिव्य सिंहासन में बैठाकर रसातल में घुस गईं। यही अनन्यार्हत्व है। ये तीनों वियोग चेतन के कल्याणार्थ तथा अनुकरण एवं उपदेश के लिये हैं इसलिये कहा गया है श्रीवचन भूषण में यथा—संश्लेष विश्लेषयोरुभयोश्च पुरुषकारत्वं भासेत ॥१२॥ संश्लेषदशा में ईश्वर को वश में करके चेतन को भगवत्सम्मुख करती हैं जैसे जयन्तादि। वियोग दशा में चेतन को वश करके भगवत्सम्मुख करती हैं जैसे रावणादि। भगवान् को अपने सौन्दर्य से वश में करती हैं जीव को अपनी कृपा से वश में करती हैं ॥ २९ ॥

आदित्यरविमीशानं घृणिं सूर्यमनामयम्।
आनन्दरूपिणं सौम्यं राघवं करूणामयम् ॥ ३० ॥

आदित्यरविम्=सूर्य के भी सूर्य (प्रकाशक) ईशानम्=नियन्ता। घृणिम्=द्युतिमान्, सूर्यम्=सूर्य विभूति वाले। अनामयम्=अविद्यादि दोष शून्य। अथवा भय प्रद अविद्या निवारक। आनन्द रूपिणम्=आनन्दप्रद, सुखात्मक विग्रहयुत। सौम्यम् =सुशील। राघवम् = रघुवंश में अवतीर्ण। करुणामयम् = करुणा ही रामरूप से आविर्भूत अर्थात् कृपाप्रचुर ॥ ३० ॥

विशेष :—श्रीरामजी ही ब्रह्मगायत्री प्रतिपाद्य हैं इसे दृढ़ करते हुये "विभुम्" में हेतु दिखला रहे हैं। आदित्यरविम्=आदित्यस्य जगत्प्रकाशकस्यापि रविम्=प्रकाशकम्। यह चन्द्रादि प्रकाशक का भी उपलक्षण है। श्रीरामचरितमानस में भी—जगतप्रकाश्य प्रकाशक रामू। एवं "सबकर परम प्रकाशक जोई" आदि। श्रुति में भी—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्। नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः, तमेवभान्तमनुभातिसर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

स्वप्रकाशक कहकर प्रभा का आश्रय होने के कारण साकार रूप ही ज्ञापित है। अतएव "सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्" से साकारत्व ही कहा गया केवल प्रभा नहीं अपि तु प्रभाश्रय तथा सूर्य के भी नियन्ता श्रीरामजी हैं अतएव ईशानम् अर्थात् नियमन करने वाले यथा—भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेतिसूर्यः। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः। आदित्यादि के प्रकाशन में हेतु हैं घृणिम् अर्थात् रश्मि,

प्रकाशक। सूर्यम्=सूर्य विभूति वाले, यथा "आदित्यादि ग्रहाः सर्वे त्वमेव रघुनन्दन। वाल्मीकीये यथा=सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यः। आदित्यादिनियन्ता होने के कारण दुर्धर्ष, दुर्गम होते हुये भी सौलभ्य प्रकाशन "सौम्यं राघवं करुणामयम् आदि तीन पदों द्वारा सूचित किया गया। सौम्यं=सुशील, यथा वाल्मीकीये—

स्मितपूर्वाभिभाषी च धर्मं सर्वात्मनाश्रितः। करुणामयम्=करुणैव श्रीरामरूपेणाविर्भूतेत्यर्थः। तदाह श्रीरामस्तवराज भाष्ये यथा---- निर्निमित्त परदुःख प्रहरणेच्छा खलु करुणोच्यते॥

अर्थात् निष्कारण परदुःख नाश की इच्छा को करुणा कहते हैं, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में यथा—व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः। उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति। महर्षि कथित भगवान् श्रीरामजी करुणामय होने के कारण ही अपने भक्तों के प्रारब्ध भोग क्षीण होने पर दुःखमय संसार सागर से उद्धार करके आनन्दमय अपने आपको प्राप्त कराते हैं। श्रीरामस्तवराज में—नारायणं जगन्नाथमित्यादि ऐश्वर्य परक आदि में पद कहकर "रामं दशरथात्मजम्" इत्यादि मध्य में माधुर्य परक पदों को कहते हुये "भर्गं वरेण्यं विश्वेशमिति गायत्री प्रतिपाद्य भी उन्हीं श्रीरामजी को कहा। अर्थात् जो जगन्नाथ जगत्पति कवि पुराण वागीश हैं। वही दशरथात्मज हैं जो दशरथात्मज हैं वही भर्गं वरेण्यं आदि गायत्री प्रतिपाद्य हैं जो गायत्री प्रतिपादित हैं, वही रघुनाथ जगद्गुरु जानकीवल्लभ हैं जो जानकीवल्लभ हैं वही आदित्य रवि आदि शब्द बोध्य हैं। जो आदित्य रवि गायत्री वाच्य हैं वही राघव करुणामय हैं वही परात्पर रामसीता समन्वित सूर्य मण्डल मध्यस्थ हैं। इसी तरह पञ्चरात्र में भी श्रीरामरूप को ही आदि रूप कहा गया है यथा—

द्विहस्तमेकवक्त्रं च शुद्ध स्फटिक सन्निभम्। सहस्रकोटि वन्हीन्दुलक्ष कोटयर्क सन्निभम्॥ मरीचि मण्डले संस्थं बाणाद्यायुधलाञ्छितम्। किरीट हार केयूर वनमाला विराजितम्॥ पीताम्बरं धरं सौम्यं रूपमाद्यमिदं हरेः॥३०॥

जामदग्निं तपोमूर्तिं रामं परशुधारिणम्।
वाक्पतिं वरदं वाच्यं श्रीपतिं पक्षिवाहनम्॥ ३१॥

जामदग्नि तपोमूर्तिं=जामदग्नि की तपश्चर्या ही मूर्ति है जिसकी। रामं=परशुराम को, परशुधारिणम्=निरन्तर परशु धारण करने वाले। वाक्पतिम्=सरस्वती नायक। वरदम्=भक्तों के अभीष्टपूर्ण करने वाले। वाच्यम्=वेदोपनिषत्कारखवाक्यगत सभी शब्दों के वाच्य अर्थात् अर्थ प्रकाशक। श्रीपतिम्=लक्ष्मी स्वामी। पक्षिवाहनम्=गरुड़ वाहन।

विशेष :—श्रीरामजी को सर्वावतारित्व दिखलाने के लिये आदि में आवेशावतार रूप को प्रणाम करते हैं। भगवान् के शक्त्यावेश से ही परशुराम में भगवत्त्व है

वह्न्याविष्ट लोह खण्ड में अग्नि के सदृश। शक्ति आकर्षण कर लेने पर केवल अर्थाचित्व मात्र अवशेष रह जाता है। श्रीरामजी को परमव्योमाधिपतित्व सिद्ध करने के लिये वाक्पति आदि विशेषण दिये गये। वाक्पतिम्=परापश्यन्ती मध्यमा वैखरी भेद वाली वाणी के पति अर्थात् पोषक तथा प्रकाशक, वाच्यम्=सम्पूर्ण पदों के अर्थ के प्रकाशक। यथा—

विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः। तथापि मूल मन्त्रस्त्वं सर्वेषां बीजमव्ययम्। मननात्त्राणनान्मंत्रः सर्ववाच्यस्य वाचकः॥

जीव प्रकृति तत् कार्यभूत सम्पूर्ण चराचर के वाचक श्रीरामजी को कहा गया है यथा वाल्मीकीये—जगत्सर्वं शरीरं ते। सम्पूर्ण शरीरी श्रीरामजी में ही पर्यवसित होते हैं अतः सर्ववाचकत्व श्रीरामजी में ही उपपन्न होता है जैसे घटशरावादि शब्द मृत्तिका के एक देश के वाचक होने के कारण घटादि द्वारा उसके कारणभूत मृत्तिका में पर्यवसित हैं उसी प्रकार विष्णु नारायण नृसिंह कृष्णादि शब्द विष्णवादि व्यक्ति द्वारा विष्णुत्वादि परब्रह्मावस्था द्वारा अथवा व्यापकत्व, जलशायित्वादि तद् गुण द्वारा श्रीरामाख्य पर-ब्रह्म में ही पर्यवसित हैं। यथा श्रीरामतापनीये—उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना। अतएव श्रीरामनाम का विष्णवादि अनेक सहस्र नाम तुल्यत्व, सर्ववेद सर्वमन्त्र जप पुण्य कोटि गुणाधिक पुण्य प्रदत्व, भी उपपन्न हुआ। यथा—

लौकिका वैदिकाः शब्दाः ये केचित्सन्तिपार्वति। नामानि रामचन्द्रस्य सहस्रं तेषु चाधिकम् ॥ १ ॥ एकैकं रामचन्द्रस्य नाम सर्वाधिकं मतम्। सहस्र नाम फलदं सर्वाभीष्ट प्रदायकम् ॥२॥ वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः।

इत्यादि प्रमाणों द्वारा वेदव्यास भी श्रीरामजी को सर्वावतारी सिद्ध किया है। अवतारों की अपेक्षा अवतारी का आधिक्य श्रीमद्भागवत में ही प्रतिपादित है, यथा—अव-तारा ह्यसंख्याता हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥ जिस तालाव से हजारों जल बहने वाली नालियां निकलती हैं उनकी अपेक्षा सरोवर श्रेष्ठ ही सिद्ध हुआ ॥ ३१ ॥

श्रीशार्ङ्गधारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम्।
हलधृग्विष्णुमीशानं बलरामं कृपानिधिम् ॥३२॥

श्रीशार्ङ्गधारिणम्=श्रीशार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले, रामम्=दशरथ पुत्र रूप से अवतीर्ण, चिन्मयानन्दविग्रहम्=चिदात्मक, आनन्दात्मक शरीर को धारण करने वाले। हलधृग्=हल को आयुध के रूप में धारण करने वाले, विष्णुम् व्यापक, ईशानम्=ईश्वर, कृपानिधिम्=अकारण कृपा सागर, बलरामम्=श्रीबलरामजी (को प्रणाम करता हूँ) ॥ ३२ ॥

विशेष :—वाक्पति आदि सामान्य शब्दों द्वारा कहकर विशेष जिज्ञासा हेतु नाम, आयुध, विग्रह को दिखला रहे हैं। श्रीशार्ङ्गधारिणमित्यादि तीन पदों द्वारा द्विभुज

श्रीरामजी को ही कहा जा रहा है, क्योंकि आद्य एवं पररूप श्रीराम जी का ही है, यथा— स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम। परन्तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्त्रयं यजेत् ॥ १ ॥ पंचरात्रेऽपि-द्विहस्तमेकवक्त्रञ्च रूपमाद्यमिदं हरेः। भगवान् श्रीरामजी चिद्घन, आनन्दघन हैं अतएव नित्य मुक्त जीवों से सेव्यमान हैं श्रीरामतापनीय में भी आपको चिन्मय कहा गया है यथा—

ॐ तत्सद्यत्परब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः।

अतएव चिन्मयानन्द विग्रहम् इति एकदेशानुमत्या, सच्चिदानन्द विग्रह अर्थ अभीष्ट है। उभयविभूतिनायक श्रीरामजी को संकर्षण रूप भी कहा जा रहा है हलधृगि-त्यादि पाँच पदों द्वारा, पद अनन्वित होने के कारण विष्णु शब्द का चतुर्भुज जगत्पालक अर्थ नहीं है अपितु व्यापक अर्थ है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, भगवान् की विभूति में आगे बतलाये जायेंगे ॥ ३२ ॥

श्रीवल्लभं कृपानाथं जगन्मोहनमच्युतम्।
मत्स्य कूर्मवराहादि रूप धारिणमव्ययम् ॥ ३३ ॥

श्रीवल्लभम्=लक्ष्मीपति, कृपानाथम्=दयावान्, जगन्मोहनम=मोहिनी, बुद्ध, आदि रूप से मोहित करने वाले या श्रीरामरूप से जगत् को मोहन करने वाले। अच्युतम् =धर्म तथा रक्षण से कभी च्युत न होने वाले, मत्स्य कूर्मवराहादि रूप धारिणम्= मीन कमठ सूकरादि रूपों को धारण करने वाले। अव्ययम्=विकार को प्राप्त न होने वाले ॥ ३३ ॥

विशेषः—श्रीरामजी ही क्षीरशायी आदि रूपों को धारणकरके सृष्टिचक्र का संचालन करते हैं इस श्लोक से दिखाया गया, अर्थात् सभी अवतारों के कारण हैं। बाल्मीकीये यथा—सङ्क्षिप्य हि पुरालोकान् माययास्वयमेव हि। महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ १ ॥ अर्थात् श्रीरामजी अपने में विलीन जीवों के कल्याणार्थ प्रलय के अन्त में प्रकृति को देखकर महदादि को उत्पन्न करके नारायण रूप से ब्रह्मादि को उत्पन्न करके जगत्सृष्टि करते हैं। भगवद्भक्ति पराङ्मुख जीवों को मोहित करते हैं अथवा श्रीराम रूप से जगत् को मोहित करते है वाल्मीकीये यथा—

रूप संहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम्। ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्यवनवासिनः ॥१॥ चन्द्रकान्ताननं राममतीव प्रियदर्शनम्। रूपोदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारकम् ॥२॥ पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः। दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमिच्छन सुविग्रहम् ॥ ३ ॥

सर्वथा विषय वासना रहित तत्त्वदर्शी महर्षिगण श्रीरामजी की परमकमनीय विग्रह को देखकर मुग्ध हो गये तो अन्य लोगों की बात ही क्या है। शूर्पणखा खरदूषण आदि भी श्रीराम रूप को देखकर मोहित हो गये। श्रीरामजी के बनगमन के अनन्तर

श्रीअयोध्याजी के चर अचर सभी प्राणी म्लान हो गये । यथा--अप्रहृष्टा मनुष्याश्च दीना नागतुरङ्गमाः । आर्तस्वरपरिम्लाना विनिः श्वसितनिः श्वनाः ॥ इससे भी श्रीरामजी का मोहन रूप सिद्ध हुआ । यद्यपि "व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः । श्रीअयोध्या वासियों के दुःखी होने पर श्रीरामजी अतीव दुःखी हुये, तथापि पिता की प्रतिज्ञा एवं विभीषणादि भक्तों का रक्षण करने से च्युत नहीं हुये इसीलिये अच्युत पद कहा गया । भगवान् श्रीरामजी ही मत्स्यादि अवतारों को धारण करते हैं और कभी भी विकार को नहीं प्राप्त होते अतः सभी अवतारों की अवतारभूमि हैं यथा, सर्वेषां ह्यवताराणामवतारी रघूत्तमः ॥ ३३ ॥

वासुदेवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम् ।
गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजन मनोहरम् ॥ ३४ ॥

वासुदेवम् = सब जगह वास करने वाले, जगद्योनिम् = जगत् के कारण, अनादिनिधनम् = उत्पत्ति विनाश रहित । हरिम् = अपने से ही उत्पन्न होने वाले प्रपञ्च को अपने में ही संहार करने वाले । गोविन्दम् = इन्द्रियों को वश में करने वाले, या वेदोपनिषद् के जानने वाले । गोपतिम् = वेदरक्षक, या इन्द्रियों के स्वामी, विष्णुम् = व्यापक, गोपीजन मनोहरम् = गोपाङ्गनाओं के मन को हरण करने वाले ॥३४॥

विशेष :--श्रीरामजी ही मत्स्यकूर्मवराह कृष्णादि रूपों को धारण करके अनेक प्रकार की लीलायें भक्तोंके कल्याणार्थ करते हैं इसको सूचित किया जा रहा है । वासुदेवम्--

वसति सर्वत्रेति वासुः, वसधातो रुणप्रत्ययः । दिव्यतीति देवः, नाना विधेषु दिव्येषु धामसु नित्यं निवसन् दीव्यते क्रीडतियः तमित्यर्थः। जगद्योनिम् = चिदचिच्छरीरकाच्छ्रीरामादेव जगदुत्पत्तेः यथा---यथैव वट बीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः । तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥

जैसे वटबीज में महावृक्ष स्थित है उसी प्रकार रामरूपी बीज में चराचर जगत् सर्वदा विराजमान् रहता है ॥ ३४ ॥

गोपालं गोपरिवारं गोपकन्या समावृतम् ।
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशं रामं कृष्ण जगन्मयम् ॥ ३५ ॥

गोपालम् = गो पालन करने वाले, गोपरिवारम् = गावः परिवारोऽस्य गौ परिवार हैं जिनके अर्थात् गोप्रिय । गोपकन्यासमावृतम् = गोप कन्याओं से सम्यक् आवृत अर्थात् गोपकन्या सेवित । विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशम् = समूह बिजली के समान कान्तिमान् । कृष्णम् = इन्द्रनीलमणि के समान प्रभा वाले । जगन्मयम् = चराचर रूप जगत् को उत्पन्न एवं अपने में ही लीन करने वाले, रामम् = धर्म संस्थापन एवं भक्तत्राण हेतु नाना रूप धारण करने वाले ॥ ३५ ॥

गो गोपिका समाकीर्णं वेणुवादन तत्परम्।
कामरूपं कलावन्तं कामिनीकामदं विभुम् ॥ ३६ ॥

गोगोपिकासमाकीर्णम्=गौ तथा गोपबालाओं से वेष्ठित । (गो दोहन के बहाने दर्शनार्थ आई हुई गोपिकाओं से सम्यक् आकीर्ण-आच्छन्न) वेणुवादनतत्परम्= वंशी बजाने में संलग्न । कामरूपम्=कन्दर्प के भी मानको दूर करने वाले (नितान्त कमनीय रूप) कलावन्तम्=गोपिकाओं को सन्तुष्ट करने के लिये नृत्यगीतादि कला प्रदर्शन करने वाले। कामिनी कामदम्=गोपिकाओं के आलिङ्गनादि अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले। विभुम्=प्रत्येक गोपी के लिये अनेक विग्रह से आविर्भूत ॥ ३६ ॥

विशेष—कौशल खण्ड में स्पष्ट कहा गया है कि— "आजुहाव ससीनेशस्ताः सर्वा जगदीश्वरः । गानेन वेणुनाशाकं सर्वचेतोपहारिण ॥" अर्थात् जगदीश्वर श्रीसीता-पति श्रीराघवेन्द्र ने सभी के चित्त को हरण करने वाले वेणुगीत द्वारा सभी गोपियों का आह्वान किया। "गोपालं गोपरिवारं गोपकन्यासमावृतम्" इस श्लोक के भाष्य में भाष्यकार ने स्पष्ट कहा है कि इस श्लोक से दान लीला का वर्णन करते हैं—श्रीनारदजी की प्रेरणा से श्रीदशरथजी महाराज राक्षसों के विनाश के लिए एक यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। प्रभु के वेणुनाद श्रवणकर उस यज्ञ में गोपियाँ घृत आदि हविष लेकर पधारीं तथा श्रीराघवेन्द्र से अपने हविका विशिष्ट मूल्य माँग रहीं हैं।

मन्मथं मथुरानाथं माधवं मकरध्वजम् ।
श्रीधरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परात्परम् ॥ ३७ ॥

मन्मथम्=मनांसिमथ्नाति अर्थात् अपने अवलोकनादि द्वारा मनको क्षुब्ध करने वाले (मनोहरण करने वाले, मथुरानाथम् = श्रीशत्रुघ्नजी द्वारा मथुरा का पालन करने वाले। माधवम्=लक्ष्मीपति । मकरध्वजम्=मीनध्वजा में है जिसके-कन्दर्प स्वरूप। श्रीधरम्=श्री जी को धारण करने वाले अर्थात् श्री जी से चिह्नितवक्षस्थल। श्रीकरम्= ऐश्वर्य प्रकाशक। श्रीशंभ्=श्री के स्वामी। श्रीनिवासम्=श्री का निवास है जिनमें अथवा श्री के साथ निवास करने वाले। परात्परम्=पर (ब्रह्मादि) से भी परे अर्थात् ब्रह्मादि देवताओं के स्वामी। "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" यो वै ब्रह्माणं विदधाति" इत्यादि श्रुतिप्रतिपाद्य (उनको मैं प्रणाम करता हूँ) इस श्लोक द्वारा श्रीराम गोपाल रूप से श्रीराम जी की रासलीला का निरूपण किया गया है। कौशल खण्ड में श्रीरामसहस्रनाम में 'सरयूकूल रासस्थः' यह एक नाम कहा गया है। गलदागादी के स्वामी श्रीहर्य्याचार्यजी ने भी अपने रामस्तवराज भाष्य में इसी प्रकार व्याख्या की है। स्वामी श्रीमधुराचार्यजी ने भी स्व रचित "सुन्दरमणि सन्दर्भ" में श्रीसीतारामजी के रास विलास का प्रतिपादन वाल्मीकि रामायण के प्रमाणों से विशद रूप से किया है।

भूतेशं भूपतिं भद्रं विभूतिं भूतिभूषणम्।

सर्व दुःख हरं वीरं दुष्ट दानव वैरिणम् ॥ ३८ ॥

भूतेशम्=भूतानां प्राणिनाम् ईशम् इष्टम् अथवा सभी प्राणियों के स्वामी। भूपतिम्=पृथ्वी के भार को दूर करके उसके पोषक। भद्रम्=मङ्गलरूप अर्थात् पृथ्वी में मङ्गल करने वाले। विभूतिम=अणिमादिक सिद्धि द्वारा सेवित। भूतिभूषणम्=ऐश्वर्य के भूषणभूत अर्थात् "सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम्।" सर्वदुःखहरम् सम्पूर्ण दुःख दूर करने वाले, अथवा स्वाश्रितजनों के समय-समय पर होने वाले दुःखों को देखकर दुःखहरण मात्र के लिये आविर्भूत होकर दुःख नाश करने वाले। यथा पञ्चरात्रे "सर्वावताररूपेण दर्शनस्पर्शनादिभिः। दीनानुद्धरते यस्तु स रामः शरणं मम ॥ वीरम =प्रदीप्ततेज सम्पन्न दुष्टदानववैरिणम्=दुःख देने वाले दानवजनों के नाशक ॥ ३८ ॥

श्रीनृसिंहं महाबाहुं महान्तं दीप्ततेजसम् ।
चिदानन्दमयं नित्यं प्रणवं ज्योति रूपिणम् ॥३९॥

श्रीनृसिंहम्=नरों में सिंह, महाबाहुम्=विशाल भुजा वाले। (आजानुबाहु महान्तम्=पूज्य या श्रेष्ठ। दीप्ततेजसम्=प्रकृष्ट प्रताप। चिदानन्दमयम्=स्वप्रकाश तथा आनन्द स्वरूप। नित्यम=सदा एकरस, उत्पत्ति विनाश रहित। प्रणवम्=ओंकारस्वरूप, ज्योति रूपिणम=आदित्यादि प्रकाशक ॥ ३९ ॥

विशेष श्रीनृसिंहम्=नृसिंहः श्रीयुक्तश्चासौ नृसिंहस्तम् अर्थात् श्रीयुत् पुरुष-सिंह, मत्स्यकूर्मादि के सदृश नृसिंहावतार नहीं क्योंकि पहिले अवतार रूप से कहा जा चुका है। चिदानन्दमयम् पद में चिदानन्द शब्द के ही अर्थ में मयट् प्रत्यय हुआ है। नित्यम् पद का प्रागभावाप्रतियोगि, ध्वंसाप्रतियोगि अर्थात् जिसका प्रागभाव तथा ध्वंस न हो। ज्योतिरूपिणम्=आदित्य जगत् को प्रकाशित करने वाले, बाल्मीकीये यथा सूर्य-स्यापि भवेत्सूर्योह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः। अथवा ज्योतिस्वरूप, श्रीरामतापनीये यथा—स्वभूर्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते। जिसे मानस रामायण में "सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ॥" कहा गया ॥ ३९ ॥

आदित्य मण्डलगतं निश्चितार्थस्वरूपिणम् ।
भक्त प्रियं पद्मनेत्रं भक्तानामीप्सितप्रदम् ॥ ४० ॥

आदित्यमण्डलगतम्=सूर्य मण्डल में विराजमान अथवा गायत्री प्रतिपाद्य। निश्चितार्थ स्वरूपिणम्=निश्चित है अर्थात् सिद्धान्त सिद्ध है अर्थ स्वरूप=परमार्थभूत भक्त प्रियम्=भक्तों के प्रिय, अथवा भक्त प्रिय है जिनको। पद्मनेत्रम्=कमल के समान विशाल अरुणिमागर्भित कर्णावलम्बिनयन। भक्तानामीप्सित प्रदम्=भक्तों को अभीष्ट प्रदान करने वाले, न केवल वाञ्छित इष्ट, जिसके द्वारा भक्त का सर्वथा अभ्युदय होता रहे वही प्रदान करते हैं ॥

विशेष----आदित्यमण्डलगतम=जिसे "सूर्यमण्डल मध्यस्थम्" पद से कहा गया है जो वरेण्यं तथा भर्ग शब्दका अर्थ है। इसे बार-बार कहना श्रीरामजी गायत्री प्रतिपाद्य

हैं इसे दृढ़ करता है। निश्चितार्थस्वरूपिणम्—छान्दोग्ये यथा—

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्पः आकाशात्मा, सर्वकर्मा सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यासतोऽवाक्यनादः ॥ ३ । १४ । २ ॥

जिसे "भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा, सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म चैतत।" श्वेता० उप० १ । १२ । में भी कहा गया है ॥ ४० ॥

कौशलेयं कलामूर्तिं काकुत्स्थं कमलाप्रियम् ।
सिंहासने समासीनं नित्यव्रतमकल्मषम् ॥ ४१ ॥

कौशलेयम् = कौशलाया अयमधीश्वरस्तम, अयोध्याधिपति । कलामूर्तिम् = भगवान् की विग्रह मूर्ति, अवतार हैं जिनके, अथवा चौंसठ कला मूर्ति हैं जिनकी अर्थात उन सब कलाओं में अत्यन्त प्रवीण, काकुत्स्थम् = काकुत्स्थ वंश में प्रादुर्भूत । कमलाप्रियम् = श्रीलक्ष्मीजी के प्रिय । सिंहासने = सिंहासन में । समासीनम = विराजमान, नित्यव्रतम = धर्माचार परायण, में अत्यन्त सावधान । अकल्मषम् = दोष पाप आदि से रहित (श्रीरामजी को मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ ४१ ॥

विशेष---भक्तेप्सित प्रदत्व का निर्देश किया जाता है—कौशलेयम कौशलदेश के (श्रीअयोध्याजी) समस्त निवासियों को लेकर स्वधाम श्रीरामजी गये यथा—"कौशलास्तेयुस्तत्र यत्र गच्छन्ति योगिनः" । कमलाप्रियम् = निखिल सौन्दर्यनिधि कमला हैं उनके प्रिय अर्थात् श्रीलक्ष्मीजी से अधिक कमनीय विग्रह श्रीरामजी हैं । सिंहासने समासीनम् पदसे श्रीरामजी परमसेव्य हैं यह ज्ञापित हुआ । अतएव अकल्मष पापादि दोषों से रहित हैं अर्थात् जिनके स्मरण मात्र से प्राणी निर्मल हो जाता है । श्रीमद्भागवते यथा—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् । लोकस्य सद्यः विधुनोति कल्मषं तस्मैसुभद्रश्रवसे नमोनमः ॥ वर्तमानं च यत्पापं यद्भूतं यद् भविष्यति । तत्सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानल कीर्त्तनम् ॥

मृत्युकाल में भगवन्नाम् सदृश पुत्र नाम कहकर अजामिल भी भगवद्धामको प्राप्त हुआ । श्रीमद्भागवते यथा - म्रियमाणो हरेर्नाम गृह्णन पुत्रोपचारितम । अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धयागृणन ॥ ४१ ॥

विश्वामित्र प्रियं दान्तं स्वदार नियतव्रतम् ।
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं यज्ञपालन तत्परम् ॥ ४२ ॥

विश्वामित्रप्रियम = विश्वामित्रजी के प्रिय अथवा विश्वामित्रजी प्रिय हैं जिन्हें दान्तम = जितेन्द्रिय । स्वदारनियतव्रतम् = अपनी स्त्री ही में भोगनिष्ठा है जिनकी अर्थात् श्रीजानकीजी को छोड़कर अन्यत्र भोगेच्छा का सर्वथा अभाव । यज्ञेशम् = यज्ञ के स्वामी (अर्थात यज्ञका फल श्रीरामजी को अर्पण किये बिना यज्ञकर्ता अपना कल्याण नहीं देखते)

यज्ञपुरुषम्=यज्ञ के द्वारा आराधनीय। यज्ञपालनतत्परम्=विश्वामित्रजी के यज्ञरक्षण में कटिबद्ध। विशेष--विश्वामित्र प्रियम् = सम्पूर्ण सत्कर्म करने का फल श्रीरामजी की प्राप्ति है वह श्रीविश्वामित्रजीको प्राप्त है इससे अधिक कोई लाभ है ही नहीं अतएव विश्वामित्रजी के प्रिय हैं। श्रीरामजी के अवतार का मुख्य प्रयोजन "मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः। श्रीमद्भाग०, मनुष्यों को शिक्षा देना मुख्य, गौण प्रयोजन दुष्टसंहार, इन दोनों प्रयोजनों की सिद्धि श्रीविश्वामित्रजी के द्वारा सम्पन्न होती है। इसी प्रकार अवतार के अवान्तर प्रयोजन अहिल्योद्धार आदि के भी हेतु श्रीविश्वामित्र हैं अतः विश्वामित्रजी श्रीरामजी के प्रिय हैं। इस श्लोकमें स्वदारनियतव्रतम् की व्याख्या करते हुये भाष्यकार लिखते हैं कि— 'दाराः' शब्द नित्य बहुवचनान्त है इसीलिये श्रीरामजी ने श्रीभरतजी से कुशल प्रश्न पूछते हुये कहा कि क्या तुम्हारी स्त्रियाँ सकुशल हैं ? "कच्चित्ते सफला दाराः" । इस प्रकार श्रीरामजी एवं श्रीभरतजी में भी देवर्षिनारदजी बहु पत्नीत्व स्वीकार करते हैं। 'प्रमदामनोहर गुणग्रामाय रामात्मने' इस चौवनवें श्लोक में भी श्रीरामजीको प्रमदाओं के मनको हरण करने वाले गुणसमूह वाला कहा गया है।

महर्षि वाल्मीकिने जनकजी द्वारा सैकड़ों कन्यादान प्रदान करने की बात कही है—ददौ परमसंहृष्टः कन्याधनमनुत्तमम्। समुद्रतट पर श्रीरामजी के शयन करते समय उनकी भुजाओं का वर्णन करते हुये महर्षिने कहा है कि श्रेष्ठकांचनकेयूर मुक्तादि विभूषणों से विभूषित परमनारियों की भुजाओं से श्रीरामजीकी भुजा अनेकधार मर्दित है वरकाञ्चनकेयूरमुक्तावर विभूषणैः। भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा। यहाँ परम नारी का अर्थ दासी या सौरन्ध्री नहीं है । उत्तरकाण्ड में भी अशोक-वाटिका विहार प्रसंग में "रामो रमयतांवरः" कहकर श्रीरामजी के रासविलास का विस्तृत वर्णन है। भगवान् के 'एकपत्नीव्रतधरः' इस श्लोक का अर्थ है एक मुख्य श्रीजानकी जी के साथ ही श्रीरामजी धर्मानुष्ठान व्रत आदि का अनुष्ठान करते हैं। "सहधर्मचरी" का भी यही तात्पर्य है। भोगपत्नियाँ तो उनकी अनेक थीं 'स्वदारनियतव्रतम्' का यही तात्पर्य है।

सत्यसन्धं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम् ।
सर्व क्लेशापहरण विभीषण वर प्रदम् ॥४३॥

सत्यसन्धम् = सत्य प्रतिज्ञा वाले अर्थात् जिनकी प्रतिज्ञा कभी भङ्ग न हो, जितक्रोधम् =जीत लिया है कोपको जिसने अर्थात प्रसह्य क्रोध रहित (अविनीत के प्रति भी क्रोधाभाव) शरणागतवत्सलम् =शरण में आये प्राणि मात्र का रक्षण भरण वत्स के सदृश। सर्वक्लेशापहरणम्=अविद्यास्मितरागद्वेषाभिनिवेश रूप जो पाँच क्लेश हैं उनके अपहरण (नाश) करने वाले। विभीषणवरप्रदम्=विभीषण को वरदान देने वाले।

विशेष :- सत्यसन्धम् =सत्य प्रतिज्ञा, वाल्मीकीये यथा-तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञोयदभिकांक्षितम्। करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥ १ ॥ अप्यहं जीवितं जह्यांत्वां वा सीते सलक्ष्मणम्। नहि प्रतिज्ञां प्रतिश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ २ ॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ।

जैसे व्रती अपने व्रत का पालन प्रयास पूर्वक कष्ट सहन करके करता है उसी प्रकार श्रीरामजी का अभय प्रदान व्रत है प्रत्येक अवस्थाओं में उसका पालन प्रयास पूर्वक कष्ट सहन करके भी करते हैं व्रत भङ्ग न हो इसके लिये सतत् जागरूक रहते हैं। बाल्मीकीये यथा—

मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेय कथंचन । दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ॥ १॥ आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणंगतः । अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥२॥ स चेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वापि न रक्षति । एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानाम रक्षणे । स्वयाशक्त्या यथा सत्वं तत्पापं लोकगर्हितम् ॥ ३ ॥ विनष्टं पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणागतः । आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥ ४ ॥ अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्य विनाशनम् ॥ ५ ॥ द्विः शरं नाभि संधत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान् । द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभि भाषते ॥ ६ ॥

भगवान् की शरण में आये हुये प्राणी का भगवत्कैंकर्य के अतिरिक्त अन्य कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता । सर्वक्लेशापहरणम्=कलत्रपुत्र भृत्यादि में आत्मीय भाव को अविद्या कहते हैं उनके सुख दुःख में अपने को सुखी दुःखी मानना अस्मिता है । सुखानुशयी द्वेष तथा अभिनिवेश (मरणादि का भय, सुखादि नाश होने का त्रास) इन पांचों प्रकार के क्लेश (दुःख) को दूर करने वाले हैं । अथवा पुरुषार्थ चतुष्टय के साधनभूत जो क्लेशप्रद उपाय हैं उनका अपहरण जिससे हो अर्थात् साधन अनुष्ठान के बिना भी शरणागत को अभीष्ट प्रदान करने वाले । यथा—या वै साधन सम्पत्तिः पुरुषार्थ चतुष्टये । तया बिना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः ॥१॥ वात्सल्य का उदाहरण दे रहे हैं विभीषण वरप्रदम्—स्वशरणागत क्लेशापहरण द्वारा केवल मोक्षमात्र ही नहीं देते, अपि तु इस लोक के भी सभी अभीष्ट पूर्ण करते हैं । बाल्मीकीये यथा—

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम् । राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतद्व्रवीमि ते ॥ १ ॥ रसातलं वा प्रविशेत् पातालं वापि रावणः । पितामह सकाशं वा न मे जीवन् विमोक्षते ॥ २ ॥ अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रबल वान्धवम् । अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे ॥ ३ ॥

अतः शरीर, वाणी, मन, धन, जन द्वारा भवशाप विमोचनी श्रीरामजी की। सेवा ही करनी चाहिये । सिद्धान्त दीपके यथा—कायेन वाचा मनसा धनेन च जनेन च । राम सेवा सदा कार्या भवपाश विमोचनी ॥ सि० दी० २२ ॥ ४३ ॥

दशग्रीवहरं रुद्रं केशवं केशिमर्दनम्।
वालि प्रमथनं वीरं सुग्रीवेप्सित राज्यदम् ॥ ४४॥

दशग्रीवहरम=दशग्रीव (दश शिर) रावण का वध करने वाले। रुद्रम्=रौद्र-स्वरूप। केशवम्=ब्रह्मा विष्णु रुद्र को सृष्टि स्थिति संहार शक्ति प्रदान द्वारा उनकी योग्यता का सम्पादन करने वाले। केशिमर्दनम=केशि नामक दैत्य का वध करने वाले। वालि प्रमथनम्=बाली का बध करने वाले। सुग्रीवेप्सितराज्यदम्=सुग्रीव को अभीष्ट राज्य देने वाले। वीरम्=वीर पुरुष।

विशेष :-श्रीरामजी केवल अभीष्ट ही पूर्ण नहीं करते अपितु भक्त के विरोधी का नाश करके योगक्षेम का भी वहन स्वयमेव करते हैं यह दिखाया जा रहा है। दशग्रीव-हरम्=विभीषण के विरोधी रावण के दशशिर का छेदन करने वाले हैं। वाल्मीकीये यथा-गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः। पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्र हतो यथा ॥ युद्ध का० १११।२२॥ रुद्रम्=रावण के वधकाल में भी अतिशय क्रोधयुक्त। वाल्मीकीये यथा—स रावणाय संक्रुद्धोभृशमायम्यकार्मुकम्। चिक्षेप परमायत्तस्तं शरं मर्मघातिनम् ॥ यु० का० १११।१६॥ केशवम्=कः ब्रह्मा, अः=विष्णुः, ईशः, रुद्रः, केशाः=ब्रह्म विष्णु रुद्रः तान्=वासपति अर्थात् सृष्टि स्थिति संहार शक्ति प्रदान द्वारा तत्तदधिकार की योग्यता सम्पादक। स्कन्द पुराणे यथा—

मुख्यत्वाद् विश्वबीजत्वात तारकत्वान्महेश्वरः। त्वदंशै स्वीकृतं राम हयस्माभिर्नामते त्रिभिः ॥ १ ॥ भार्गवोऽयं पुराभूत्वा स्वीचक्रे नाम ते विधिः। विष्णुर्दाशरथिर्भूत्वा स्वीकरोत्यधुना प्रभो ॥२॥ संकर्षणस्ततस्तेऽहं स्वीकरिष्यामि शाश्वतम्। एकमेवत्रिधा जातं सृष्टिस्थित्यन्त हेतवे ॥ ३ ॥ एवमादिसुराः सर्वे युक्ताः श्रीरामतेजसा। जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ॥ ४ ॥ वालि प्रमथनम् वाल्मीकीये यथा--अमोघाः सूर्य संकाशा ममैते निशिताः शराः। तस्मिन् वालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यन्ति वेगिताः ॥१॥ यावत्तंनाभिपश्यामि तव भार्यापहारिणम्। तावत्स जीवेत्पापात्मां वाली चारित्र दूषकः ॥२॥ आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नं त्वां शोक सागरे। त्वामहं तारयिष्यामि कामं प्राप्स्यसि पुष्कलम् ॥ ३ ॥ कि० का० १०।३३, ३४॥

वालि बध की इस प्रतिज्ञा को भगवान् श्रीरामजी करके वालिवध के लिये प्रस्तुत हो गये। वाल्मीकीये यथा--

मुक्तस्तु वज्र निर्घोषः प्रदीप्ताशनिसंनिभः। राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥ १ ॥ ततस्तेन महातेजा वीर्योत्सिक्तः कपीश्वरः। वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ॥ २ ॥ कि० का० १७।३५।३६ ॥

सुग्रीवेऽभिषिक्तराज्यदम्=सुग्रीव के राज्याभिषेक काल में श्रीहनुमान जी ने कहा। वाल्मीकीये यथा—भवत्प्रसादात्सुग्रीवः पितृपैतामहं महत्। वानराणां सुदुष्प्रापं प्राप्तो राज्यमिदं प्रभो ॥ १ ॥ कि० का० २६।४।४४ ॥

नरवानरदेवैश्च सेवितं हनुमत् प्रियम्।
शुद्धं सूक्ष्मं परं शान्तं तारकं ब्रह्मरूपिणम् ॥४५॥

नरवानरदेवैश्च=मनुष्य वानर देवताओं से, सेवितम्=जुष्ट अर्थात् प्रेम-भाजन। हनुमत्प्रियम्=हनुमान्जी के प्रिय, या हनुमान जी प्रिय हैं जिन्हें। शुद्धम्=प्राकृत गुण रहित सूक्ष्मम्=दुर्बोध। परम्=सबसे श्रेष्ठ। शान्तम्=आनन्द स्वरूप, तारकम् =मुक्ति प्रदान करने वाले। ब्रह्मरूपिणम्=बृहद्गुण युत रूप वाले अर्थात् भगवान् से भिन्न भगवान् की विग्रह नहीं है, भगवान की विग्रह अपृथक् सिद्ध विशेषण भगवान् का ही है ॥४५॥

विशेष :—सुग्रीवादि के स्वामी श्रीरामजी हैं इसको बतलाया जा रहा है—नरवानरदेवैश्च=मनुष्य वानर देवता आर्त जिज्ञासु अर्थार्थी भक्त हैं इनकी प्रीति श्रीरामजी में अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये है। अतएव इनके द्वारा सेवित मात्र कहा गया प्रिय नहीं कहा गया। श्रीहनुमान जी का अपना कोई प्रयोजन नहीं है इसलिये हनुमानजी प्रिय हैं। श्रीहनुमान् जी का स्नेह श्रीरामजी में ही है, स्नेह मनोधर्म है अतः एक श्रीराममनस्कत्व भी श्रीहनुमान जी में सिद्ध हुआ, इसीलिये उपाय उपेय दोनों श्रीरामजी को ही श्रीहनुमान जी ने माना है। प्रपन्न के लिये जितने धर्म शास्त्र में कहे गये हैं वे सब श्रीहनुमानजी में वर्तमान हैं गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि पाप के तारतम्य से पापी प्राणी चार प्रकार के हैं जो मेरी प्रपत्ति नहीं करते, चार प्रकार के सुकृतिजन भी हैं जो मेरी शरण में आते हैं आर्त से अर्थार्थी श्रेष्ठ हैं। इससे जिज्ञासु और जिज्ञासु से ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ है श्रीहनुमान्जी ज्ञानी भक्त से आगे हैं ज्ञानी भक्त को प्रारब्ध देह भोगने के बाद ही भगवान की प्राप्ति होती है, ज्ञानी भक्त को भगवान् का केवल मानस प्रत्यक्ष ही होता है, हनुमानजी श्रीराम जी को परब्रह्म जानकर ही सब प्रकार से समयोचित कैंकर्य करते हैं, नित्यदर्शन करते हैं त्रिपाद् विभूति में भी श्रीरामजी की ही सेवा करते हैं भगवच्चरणों में प्रेम के अतिरिक्त उन्हें कुछ भी नहीं चाहिये श्रीहनुमानजी में अनन्यशेषत्व,अनन्योपायत्व, अनन्यभोग्यत्व, अनन्योपेयत्व, अनन्यदेवत्व, अनन्यमन्त्रत्वादि सभी प्रपन्न धर्म नियत-रूप से रहते हैं, श्रीहनुमान् जी ने स्वयं कहा है यथा—

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयितिष्ठतुनित्यदा। मतिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥ १० ॥ यावद्राम कथा वीर चरिष्यति महीतले। तावच्छरीरे वत्स्यन्ति प्राणा मम न संशयः ॥२॥ वाल्मीकीये-७।४०।१६,१६॥

श्रीहनुमान् जी के समान प्रपत्ति अनेक जन्म के पुण्य का फल है यथा—

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ा प्रपद्यन्ते नराधमाः । माययाऽपहृत ज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१॥ चतुर्विधा भजन्ते मां जना सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ २ ॥ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते । प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ ३ ॥ उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् । आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥४॥ बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ ५ ॥ गीता ७।१५--१९॥

ब्रह्मरूपिणम्=ब्रह्मात्मकम् (बृहद्गुणयोगिरूपं विद्यते यस्य तम्) भगवान् का शरीर भगवान् का अपृथक् सिद्ध विशेषण है यथा श्रीराम ता० "अर्द्ध मात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥ विग्रह बृहद् गुण योगी होने के कारण ब्रह्मशब्दवाच्यता भी उसमें सिद्ध हुई ॥ ४५ ॥

'सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं सनातनम् ।
सर्व कारण कर्तारं निदानं प्रकृतेः परम् ॥ ४६ ॥

सर्वभूतात्मभूतस्थम्=सर्वभूत-आकाशादि भूत भगवान् के शरीर रूप हैं। सर्वाधारम=सभी चिदचिद् वस्तु के आश्रय, सनातनम्=सर्वदा एकरस रहने वाले, अर्थात् नित्य ही सर्वाधार। सर्वकारणकर्त्तारम्=सर्वकारण प्रधानादि के कर्त्ता, अथवा निमित्तोपादान सहकारी कारण के कर्त्ता। निदानम्=आदिकारण। प्रकृतेः परम्=प्रकृति की परिधि से पर उत्कृष्ट, श्रेष्ठ अर्थात् प्रकृति विशेषण वाले विशेष्य। (श्रीरामजी को प्रणाम करता हूँ)

विशेषः—सर्वभूतात्मभूतस्थम्=सर्वे भूताः अकाशादिपञ्च भूताः, आत्मभूते तिष्ठन्ति आत्मभूतस्थः तं सर्वभूतात्म भूतस्थम्=अर्थात् आकाशादि पञ्चमहाभूत भगवान् श्रीरामजी के आत्मा मे स्थित हैं अर्थात् शरीर रूप हैं। यथा-जगत्सर्वं शरीरन्ते सर्वाधारम=सर्वेषां चिदचिद् स्तूनामाधारम् अचिद् (भूतादि) के उपादान कारण, चिद् (जीव) के अन्तर्यामी होने के कारण आधार अर्थात् आश्रय। सर्वकारणकर्त्तारम्=सर्वेषां कारणानां। प्रधानादीनां निमित्तोपादन सहकारि कारणानां कर्त्तारम्। तत्तत्कार्यानुरूप शक्ति प्रदत्वेन प्रसिद्ध मित्यर्थः। जगत् की सृष्टि ब्रह्मा जो कुलाल के समान करते हैं वह शक्ति श्रीरामजी के प्रसाद से ही प्राप्त है महदादिज ड्वर्ग हैं भगवान् की चिद् शक्ति के बिना जगदाकार रूप से परिणाम असम्भव है। सृष्टिकाल के बिना भी सृष्टि असम्भव है अतः कालादि के अन्तर्गत होकर श्रीरामजी ही सहकारी कारण होते हैं। यथा - सः कालकालो गुणी सर्वविधिः" इत्यादि श्रुति प्रमाण है। इसी को "निदानं प्रकृतेः परम्" इस चतुर्थ चरण से कहा गया। निदानम आदिकारण हैं। यथा—एतस्माद

आत्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशाद् वायुः" इत्यादि प्रकृतेः परम् प्रकृति के लेप से रहित हैं ॥ ४६ ॥

निरामयं निराभासं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
नित्यानन्दं निराकारमद्वैतं तमसः परम् ॥४७॥

निरामयम् = जन्ममरण रूप संसार के रोग का निवारण करने वाले । निराभासम् = आभास (प्रतिबिम्ब) भाव रहित । निरवद्यम = दोष रहित । निरञ्जनम् = अज्ञान रहित । नित्यानन्दम् = सदा आनन्दादि गुण निलय । निराकारम् = प्राकृत आकार रहित अर्थात् दिव्य मंगल विग्रह । अद्वैतम् = चिदचिद् विशिष्ट रूप से भिन्न रूपाभाव । तमसः परम् = जड़वर्ग प्रधानादि से पर अर्थात् प्रधानादि के कारण किन्तु उसके दोष से सर्वथा रहित ।

विशेष :– निर्गतः आमयो यस्मात्तमित्यर्थः । निराभासम् = निर्गतः आभासः प्रतिबिम्बो यस्मात्तम् । परिच्छिन्न पदार्थ में ही प्रतिबिम्ब भाव देखा जाता है भगवान् देशकाल वस्तुत्रिविध परिच्छेद शून्य हैं । तमोगुण का कार्यभूत प्रधान कार्य आकाश भी परमात्मा शरीर का व्याप्य है इसलिये जलादि में उसका प्रतिबिम्ब स्वाभाविक है । व्यापक नीरूप पदार्थ का प्रतिबिम्ब सर्वथा असम्भव है । अद्वैतम् = स्वसदृश द्वितीय रहित । यथा—

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" "न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः" चिन्मयस्या द्वितीयस्य ब्रह्मणोरूप कल्पना" इत्यादिश्रुतिसिद्ध ॥४७॥

परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम् ।
मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥४८ ॥

परात्परतरम् = परशब्द वाच्य जगत्कारण प्रधानादि उससे परनित्यमुक्त जीव-समूह अतिशय पर अर्थात् नित्यमुक्त से सेव्यमान श्रीराम जी । तत्त्वम् = परमपुरुषार्थ रूप अर्थात् अर्थ धर्म काम मोक्ष रूप चतुर्विध फल प्रद । सत्यानन्दम् = सदा एक रस नित्य एवं आनन्द गुणयुक्त । चिदात्मकम् = चिन्मय, सबके प्रकाशक एवं स्वयं प्रकाश, मनसा = मन से, शिरसा = शिर से, रघूत्तमम = रघुवंशियों में, श्रेष्ठ श्रीरामजी को, नित्यम = सर्वदा, प्रणमामि = प्रणाम करता हूँ ।

विशेष :—परात्परतरमिति–परे ब्रह्मादयः तेभ्योऽपि परेमत्स्यकूर्मवाराहा-दयो भगवदवतारास्ते परात्पराः तेभ्योऽपि परं श्रीरामनामकं परब्रह्म । अर्थात् मत्स्य कूर्मवाराहादि रूप को धारण करने वाले श्रीरामजी ही हैं इसीलिये सर्वावतारी श्रीरामजी ही प्रसिद्ध हैं । यथा—एकमेवा द्वितीयम् "चिन्मयस्याद्वितीयस्य" "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" इत्यादि श्रुति सिद्ध । परात्पर तत्त्व एक ही है उसके नाम अनन्त हैं ब्रह्म, परब्रह्म, विष्णु, महाविष्णु आदि परतत्त्व, व्यापकत्वादि गुणों के द्वारा श्रीराम जी में ही इनका

पर्यवसान होता है। नारायण क्षीराब्धि निवासी, वासुदेव सर्वभूताधिवासी, हरि स्वभक्त दुःखहारी भी कर्म तथा गुणों के द्वारा श्रीरामजी में ही पर्यवसित हैं। श्रीकृष्ण नाम भी सदानन्दादि गुण द्वारा श्रीराम वाचक ही है। इसी प्रकार अन्य भगवन्नाम भी गुण कर्म द्वारा श्रीराम जी को ही कहते हैं अतः ये सब नाम गौण (गुण द्वारा प्रसिद्ध होने के कारण) कहलाते हैं। यथा महाभारते—यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः। ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ श्रीमद्भागवतेऽपि—यस्यावतार गुण कर्म विडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति। अतः कुछ नाम गुण द्वारा भक्तवत्सल, करुणानिधि आदि प्रसिद्ध हैं कुछ नाम कर्म द्वारा, रावणारि कंसारि प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। व्यापकत्वादि भगवान् के गुण ही हैं स्वरूप नहीं अतः वे नाम गौण हैं श्रीराम नाम मुख्य है। ब्रह्म के समान रामनाम वर्ण भी सच्चिदानन्द पद वाच्य हैं। श्रीरामतापनीये यथा—

स्वभूज्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते" "जीवत्यनेनेदमों यस्य" "स्वप्रकाशः परं ज्योतिः स्वानुभूत्येक चिन्मयः। तदेव रामचन्द्रस्य मनोराद्यक्षरं स्मृतम् ॥

जैसे स्वाश्रित गुणों की अपेक्षा गुणाश्रित द्रव्य का आधिक्य होता है उसी प्रकार स्वाश्रित व्यापकत्वादि गुणाश्रय अपरिच्छिन्न चिद् द्रव्य का भी कोटि गुण आधिक्य उपपन्नतर हो गया। अतः विष्णु सहस्र नाम तुल्य, सर्ववेद सर्व मन्त्र जपफल से कोटि कोटि गुण अधिक फलप्रदत्व श्रीराम नाम को कहा गया है। यथा—

विष्णोरेकैक नामैव सर्ववेदाधिकं मतम्। तादृङ्नामसहस्रैस्तु रामनाम समं मतम् ॥१॥ जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति। तस्मात्कोटि गुणं पुण्यं राम नाम्नैव लभ्यते ॥२॥ विष्णोर्नाम्नां सहस्राणां तुल्य एष महामनुः। अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाः कृताः ॥३॥ शान्तः प्रसन्नो वरदो ह्यक्रोधो भक्तवत्सलः। अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वापन विद्यते ॥४॥

कोटि गुणाधिक फल प्रदान करने के कारण ही महद् यश सम्पन्न हुआ। यथा—न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः। इसलिये अप्रतिम, अनुपम, समाभ्याधिक रहितत्त्व श्रीरामजी में ही उपपन्न हैं। यथा—"न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" 'चिन्मयस्या द्वितीयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पना" अतः श्रीरामजी ही उभयविभूतिनायक हैं इसी को श्रीनारद जी ने परात्परतत्त्व शब्द से ज्ञापित किया। "नारायणं जगन्नाथमित्यादि" पदों के द्वारा श्रीराम जी को ही सर्वावतारी भी सूचन किया। नारदजी आगे भी श्रीरामजी को अक्षर परज्योति आदि शब्द द्वारा परब्रह्म स्वीकार किया है यथा—त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः। त्वमेव तारकं ब्रह्मत्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन ॥१॥ आपसे भिन्न कोई अक्षरादि शब्द वाच्य नहीं हैं अतः अन्य का निषेध भी नारद जी द्वारा किया गया है। इसी प्रकार श्रीव्यासजी भी तीन बार शपथ खाकर श्रीरामतत्त्व को ही परब्रह्म कहा है। यथा—सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतदिहोच्यते। रामः सत्यं परब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते ॥ १ ॥

कथितं ब्रह्मपुत्रेण वेदानां सारमुत्तमम्। कहकर श्रीरामस्तवराज को वेदों का उत्तम सार (तत्त्वांश) कहा। पञ्चरात्र में श्रीरामजी को सर्वावतारी कहा गया है। यथा—

सर्वावतार रूपेण दर्शन स्पर्शनादिभिः। दीनानुद्धरते यस्तु स रामः शरणं मम।

अवतारी अवतार में भेद नहीं है हाँ इतनी बात अवश्य है जिस अवतार में अधिक गुणों का दर्शन होता है अथवा भगवदीय सभी गुणों का दर्शन है वह पूर्णावतार है जिस अवतार में अल्प गुणों का प्राकट्य है वह अंशावतार (कलावतार) कहलाता है ऋषियों ने अल्पगुण प्राकट्य बहुगुण प्राकट्य ही अंशावतार पूर्णावतार में हेतु माना है न कि पूर्णांशाविर्भाव अल्पांशाविर्भाव । अखण्ड अपरिच्छिन्नचिदेक रस को भेदन करने में कोई समर्थ नहीं है अन्यथा विभेद परिच्छिन्नत्व की आपत्ति भगवत्स्वरूप में आ जायेगी। इसलिये भगवान् के सभी अवतार स्वरूप से गुणों से पूर्ण हैं। बहुगुण प्राकट्यहेतुक पूर्णावतार, अल्पगुण प्राकट्यहेतुक अंशावतार (कलावतार) कहलाता है। यथा—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य महात्मनः । हानोपादानरहिताः नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥१॥ परमानन्दसन्दोहाः ज्ञानमात्राश्च सर्वतः। सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोष विवर्जिताः ॥ २ ॥ महावाराह पुरा० ॥

श्रीनारद पंचरात्रोऽपि, यथा—

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः। रूप भेदमवाप्नोति ध्यान-भेदात्तथाच्युतः ॥ १ ॥

अतः भगवान् की विग्रह में न्यूनाधिक्य दृष्टि को छोड़कर स्वाभीष्ट जिस किसी विग्रह में मन लगाकर सर्वतोभावेन भजन करना चाहिये। परात्परतत्त्व में हेतु प्रदर्शन किया जाता है सत्यानन्दं चिदात्मकमिति। नित्यआनन्द गुण वाले हैं, यह आनन्द पद अन्य गुणों का उपलक्षण है, विषय सेवनकाल में ही आनन्द नहीं है नहीं तो नित्यत्व का बाध हो जायेगा। स्वयं प्रकाशमान स्वरूप हैं। जीव मे चिदात्मक की अति व्याप्ति न हो इसलिये सत्यानन्द चिदात्मकम् श्रीराम विग्रह के लिये ही कहा गया है आगे भी श्रीरामजी को सच्चिदानन्द कहा गया है यथा--विरराम महातेजाः सच्चिदानन्दविग्रहः। इसी प्रकार के श्रीरामजी सिंहासन समासीन हैं यथा—सिंहासनं समासीनं नित्यव्रतमकल्मषम्" इस पूर्व श्लोक में ही अन्वय है। मनसा शिरसा यह वचसा पद का भी उपलक्षण होते हुये अन्य अंगों का भी बोधक हैं क्योंकि प्रणाम करने का विधान आठ अंगों द्वारा कहा गया है यथा--

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा। मनसा वचसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥ १ ॥

मन के द्वारा परात्परतत्त्व को जानकर तथा चिन्तवन करते हुये प्रणाम करने से "श्रीरामजी ही नारदजी के उपास्य देव हैं" यह स्पष्ट हुआ। श्रीसीताजी के सहित श्रीराम जी ही उपास्य, ध्येय, पूज्य हैं तथा जपनीय तारकाख्य षडक्षर श्रीराममन्त्र है सर्वलोकहितार्थ उपदिष्ट सर्व वेदसार भूत श्रीरामस्तवराज का यही सारभूत उपदेश है। इस स्तवराज के उपक्रम में मध्य में एवं अन्त में ऐश्वर्य माधुर्य विशिष्ट श्रीरामजी ही कहे गये हैं। इस श्लोक में भी "परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम्" से परमैश्वर्य का कथन, तथा "रघूत्तमम्" पद से परममाधुर्य का कथन स्पष्ट है। कल्पवृक्ष के नीचे रत्न-मण्डप मध्य विराजमान श्रीजानकी जी सहित श्रीरामजी हैं, योगीन्द्र नारदादि के द्वारा अहर्निशि संस्तूयमान, विश्वामित्र वशिष्ठ सनकादि द्वारा सेव्यमान भी युगलमूर्ति ही हैं। अतः "वैदेही सहितम्" "रामं सीतासमन्वितम्" "जानकीहृदयानन्दम्" आदि पद उक्तार्थ में परमप्रमाणभूत हैं ॥४८॥

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।
नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम् ॥ ४९ ॥

सूर्यमण्डलमध्यस्थम = आदित्य मण्डल के मध्य में विराजमान, सीतासमन्वितम् = श्रीसीताजी से सम्यक् निरन्तर युक्त श्रीरामजी, पुण्डरीकाक्षम् = कमल के सदृश प्रसन्न उज्ज्वल कर्ण पर्यन्त विशाल नयन युत। अमेयम् = सम्पूर्ण ज्ञान के अविषय (इयत्ता रहित) अर्थात् त्रिविध परिच्छेद शून्य। गुरुतत्परम् = वशिष्ठादि पूज्य वर्ग की सेवा में तल्लीन। रामम् = श्रीरामजी को। नमामि = नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥

विशेष :— पूर्व श्लोक में श्रीनारदजी अपने अभीष्टार्थ को कहकर उत्तर श्लोक में भी उसी अर्थ को दृढ़करते हैं 'द्विर्वद्धं सुवद्धं भवति' इस न्याय से। सूर्यमण्डलमध्यस्थमित्यादि पद से श्रीनारद जी सीता सहित श्रीराम जी के उपासक हैं उनके शिष्य वेद व्यासजी उनके शिष्य सूतजी "वैदेहीसहितम्" का ध्यान अपने मुखसे कहाहै। "रामं भजे" इत्यादि पदों के द्वारा विश्वामित्र पराशरादि मुनियों से स्तूयमान कहकर सीता सहित श्रीरामजी उनके भी उपास्य हैं यह सूचित हुआ। यद्यपि व्यासजी ने अपने ध्यान में बाल्यावस्थापन्न श्रीरामजी का ध्यान कहा है उस समय श्रीरामजी अविवाहित हैं अविवाहितावस्था में वैदेही सहित का कथन अनुपपन्न है तथापि श्रीव्यासजी को भी श्रीजानकी सहित रामजीका ध्यान अभीष्ट होना चाहिये, गुरु श्रीनारद जी तथा शिष्य सूतजी को युगलमूर्ति का ध्यान करने के कारण। सूर्य मण्डल मध्यस्थ पद से श्रीसीता युत रामजी गायत्री प्रतिपाद्य हैं और वे ही कर्म प्रवर्तक, जगज्जीवन कारण, सर्वजीव बुद्धि प्रेरक हैं यह ज्ञापित हुआ। सीतासमन्वितम् = सीतया सम्यक् अनु-निरन्तरम् इतं युक्तम्। अमेयम् = मातुं ज्ञातुमशक्यम् इसके द्वारा श्रीरामजी का रूपसंहनन, सौकुमार्य, लावण्य, गुण, लीला आदि सभी इयत्ता रहित हैं मन-वाणी का विषय नहीं हैं। परमैश्वर्य विशिष्ट दर्शन

अत्यन्त दुर्लभ है अतः परममाधुर्य दर्शन द्वारा उसे अत्यन्त सुलभ ज्ञापित किया। अभेदत्वेन परविभूतिनायक "सूर्यमण्डलमध्यस्थं तथा गुरुतत्परम्" से लीला विभूतिनायक सिद्ध किया गया। गुरुसेवा परायण होने के कारण धर्मशिक्षक भी श्रीरामजी में सिद्ध हुआ। श्रीमद्भागवते यथा—मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्" पहिले श्लोक का "नित्यं" पद इस श्लोक में अनुवर्तित है अतः "नित्यं नमामि" इसके आगे भी नमामि पद से नित्य पद सम्बद्ध है। नित्यन रहने पर कदाचित्क के कारण एक स्वाम्युद्देशक, एक कर्तृक प्रणाम में परस्पर विरोध हो जायेगा ॥ ४९ ॥

नमोऽस्तुवासुदेवाय ज्योतिषां पतये नमः।
नमोस्तु रामदेवाय जगदानन्दरूपिणे ॥ ५० ॥

वासुदेवाय=सम्पूर्णभूतप्राणियों में निवास करने वाले। नमोऽस्तु=नमस्कार है। ज्योतिषाम्=सूर्यादि प्रकाशकों के। पतये=नियन्त्रण करने वाले या उन्हें प्रकाश प्रदान करने वाले (श्रीरामजी) को नमः=प्रणाम करता हूँ। जगदानन्दरूपिणे=संसार को आनन्द प्रदान करने के कारण। रामदेवाय=अपने रूपौदार्यादि गुणों से सबको आनन्द देने वाले, अथवा योगियों के चित्त में रमण करने वाले। देवाय—सृष्टि पालन प्रलय रूप क्रीड़ा करने वाले अथवा समस्त चिद्वर्ग के उपास्य (श्रीरामजी) को। नमोऽस्तु=नमस्कार है ॥५१॥

विशेष :—श्रीरामजी के ऐश्वर्य को "वासुदेवाय ज्योतिषां पतये" इन पदों से पुनः प्रकट कर रहे हैं। जिनके भय से या नियन्त्रण में वायु चलता है सूर्य तपता है। श्रीमद्भागवते यथा—

मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः मृत्युश्चरति मद्भयाद् ॥ १ ॥ न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति ॥

इत्यादि श्रुत्युक्त पुरुष को नमस्कार है। रामदेवाय पद से श्रीराम जी का माधुर्य व्यक्त किया। बाल्मीकीये यथा—रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारकम्। "रामस्य लोक रामस्य" "रामोलोकाभिरामोऽहम्" 'मनांसि मनोहरत्येष" तथा तापनीयेऽपि" "रामनामभुविख्यातमभिरामेण वा पुनः" ॥ ५० ॥

नमो वेदान्तनिष्ठाय योगिने ब्रह्मवादिने।
मायामयनिरस्ताय प्रपन्नजन सेविने ॥ ५१ ॥

वेदान्तनिष्ठाय=वेद के अन्त (उपनिषद् भाग) में निष्ठा स्थिति है जिसकी अर्थात् उपनिषद् द्वारा प्रतिपादित श्रीरामजी के लिये। योगिने=बाह्य विषयों से चित्तवृत्ति को हटाये हुये आत्माराम, अथवा भक्तजनों के प्रीतिरस के रसज्ञ के लिये, ब्रह्मवादिने=व्याकरणादि षडङ्गवेद के प्रवर्तक के लिये। मायामयनिरस्ताय=माया तथा

माया का जो समस्त परिवार है उससे सर्वथा पृथक्। प्रपन्नजनसेविने=शरणागति युक्त जनों द्वारा आराधनीय श्रीरामजी को। नमः=नमस्कार है।

विशेषः—वेदान्त द्वारा जानने के योग्य, सर्ववेद प्रतिपाद्य परतत्त्व श्रीराम जी ही हैं इसी को "वेदान्त निष्ठाय" इत्यादि पदों द्वारा कहा गया। ब्रह्मप्रकारी शेषी है निखिलहेय प्रत्यनीक, अनन्त ज्ञानानन्दैक स्वरूप, ज्ञानशक्त्यादि कल्याण गुणगणविभूषित, अनन्त ब्रह्माण्डनायक, सृष्टि स्थिति संहारकर्त्ता, आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी, चारों प्रकार के भक्तजनों से सतत् आराध्य अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, चतुर्विध फलप्रद, सौकुमार्य, लावण्य, यौवनादि सम्पन्न, विलक्षण विग्रह विशिष्ट उभयविभूतिनायक परब्रह्म पद वाच्य श्रीरामजी हैं। वे ही अज्ञ को ज्ञान प्रदान करने वाले हैं, अशक्त को शक्ति, अपराधी को क्षमा, दुःखियों को कृपा, दोषयुक्त पर वात्सल्य, मन्दों को शील, कुटिल को कोमलता, दुष्टहृदय को सौहार्द, वियोगभीरु को मृदुता एवं दर्शन करने वालों को सुलभता वितरित करते रहते हैं। कल्याण गुणयुक्त होने के कारण ही दूसरे के दुःख को देख कर हाहाकार करके दुःख निवृत्ति में तत्पर हो जाते हैं। अनुपाय दशा में स्वयं उपायभूत होकर भक्त के पालन में दुष्कर व्यापार को करके उसके कल्याणार्थ अपेक्षित को प्रदान करते हैं। परमात्मा प्रकृति तथा जीव दोनों से विलक्षण तथा उभयशरीरक (चिदचिद् विग्रह) हैं। निर्गुण का कथन प्राकृत गुण रहित है।

'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' 'महतो महीयान्' 'प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः' 'एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः' 'एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपालः।'

इत्यादि श्रुति वाक्य द्वारा परमात्मा सबका प्रेरक, अधिपति तथा सबका नियन्ता है। वैदिकमतावलम्वी प्रकृति, जीव तथा ईश्वर इन तीन तत्त्वों को अङ्गीकार किया है तीनों नित्य हैं अजन्मा हैं। प्रकृति को भी अजा शब्द से कहा गया है यथा–'अजामेकाम्' ज्ञाज्ञौद्वावजावीशानीशौ" जीव अल्पज्ञ तथा अनीश्वर है परमात्मा सर्वज्ञ तथा ईश्वर है दोनों अज हैं। नित्यों में नित्य चेतनों में चेतन एक परमात्मा ही है वही सबकी कामनाओं को पूर्ण करता है। यथा—'नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां विदधाति कामान्' ईश्वरों का भी जो ईश्वर है वही ध्येय है— "तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्" प्रकृति रूप परिस्थित जीव ब्रह्म दोनों साथ रहते हैं जीव अपने किये हुये कर्मों का फल दुःख सुख भोगता है ईश्वर केवल साक्षी रूप प्रकाशक हैं। जिस परमात्मा का पृथ्वी शरीर है जीवात्मा शरीर है जिसे पृथिव्यादि नहीं जानते यथा—यस्य पृथिवी शरीरम् यस्य आत्माशरीरम्"। जीवात्मा को पृथक् जानकर सबका प्रेरक स्वतन्त्र परमात्मा को जानकर जो शरणागति पूर्वक उसकी आराधना करता है वह मोक्ष को या भगवद्धाम को प्राप्त करता है। यथा—"पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा" इत्यादि। 'प्रपन्नजन सेविने" उपाय

उपेय श्रीरामजी को ही जानना यह शरणागति विवेकीजन ही कहते हैं। अपने को अपराधी मानना केवल भगवद्दर्शन के लिये ही प्रार्थना करना, भगवान् के भक्तों में यह स्वरूप शरणागति कहलाती है। साधन अनुष्ठान की सामर्थ्य रखना उसके कर्त्तृत्वपने का अभिमान न करना यह अकिञ्चनत्व शरणागति है। भगवान् से अतिरिक्त उपायाख्यगति न समझना, अन्य फल सम्बन्ध रूप गति से विहीन रहना अर्थात् अन्यफल की कामना न करना, इस शरणागति को शास्त्रकारों ने अनन्य शरणागति कहा है। यथा—

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञा यस्तामुल्लङ्घ्य वर्तते। आज्ञाछेदी ममद्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः ॥ उपायत्व मुपेयत्व मीश्वरस्यैव यद्भवेत्। शरणापत्तिरित्युक्ता शास्त्र मानाद् विवेकिभिः ॥१॥ स्वापराधो क्तिपूर्वं यदात्म सात्वस्य प्रार्थनम्। स्वरूपं शरणापत्तेरित्युक्तं सात्वते खलु ॥२॥ साधनादिष्वनुष्ठानसामर्थ्ये विषयश्च यः। कार्तृत्वाद्यन हंकार आकिंचन्यतदुच्यते ॥३॥ भगवद् व्यतिरिक्ताया ह्युपायाख्या गतिर्नसा। यथान्य फल सम्बन्धरूपागति विहीनता ॥४॥

इत्यनन्यगति स्तत्रप्रोक्ताशास्त्रार्थ दर्शिभिः। इस शरणागति के छः भेद शास्त्रों में वर्णित हैं। यथा—आनकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूलस्यवर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो-गोप्तृत्व वरणं तथा। आत्मनिक्षेप कार्पण्यं षडविधा शरणागतिः ॥१॥ श्रीपुरुषोत्तमाचार्य भगवान बोधायन ने भी अपने प्रपत्तिषट्क में इसका उल्लेख किया है यथा—रामदीनो-ऽनुकुलोऽहं विश्वस्तोऽप्रातिकूल्यवान्। त्वयि न्यस्यामिचात्मानं पाहिमां पुरुषोत्तम ॥ १ ॥

गीता के आनन्दभाष्य में श्रीरामानन्दाचार्य जी महाराज द्वारा भी यही उक्तार्थ स्पष्ट किया गया है यथा—प्रार्थनांशेन शरणागतिपदवाच्यः आत्मनिक्षेपांशेन न्यासपदवाच्यश्च प्रपत्तियोग एव। "आनुकूल्यस्य संकल्पः" इत्यादि का आचार्यों ने निम्नलिखित अर्थ किया है। श्रुतिस्मृति भगवान् की आज्ञा है उसका उल्लंघन करने वाला भगवान् का भक्त नहीं हो सकता ॥१॥ श्रीराम च० मा० यथा—"आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा" अतः भगवान् की आज्ञा समझकर श्रुति स्मृत्यनुरूप कर्मानुष्ठान करने पर भगवान् अनुकूल होते हैं। विपरीत आचरण से प्रतिकूल होते हैं सर्व धर्म परित्यागपूर्वक मन वचन शरीर के द्वारा भगवान का भजन (कैंकर्य) भगवान् की अनुकूलता (प्रसन्नता) के लिये होता है। भगवद्भजन न करने वाला यदि सर्व धर्म परित्याग करे तो वह भगवान् की प्रतिकूलता (नाराजी) को उत्पन्न करता है। अथवा प्राणी मात्र के अनुकूल आचरण करना ही आनुकूल्य है. इसके विपरीत हिंसा ईर्ष्या आदि का त्याग करना शरणागति का दूसरा अङ्ग "प्रातिकूल्यस्य वर्जनम" है। कुछ लोग इसे मुमुक्षु मात्र का साधारण धर्म कहते हैं भक्त के लिये साधारण धर्म "सर्व धर्मान् परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ १ ॥ भगवान् का भजन न करके यदि सामान्य धर्म का

परित्याग कर देता है तो वह निन्द्य है इस प्रातिकूल्य का वर्जन, प्रपत्ति का द्वितीय अङ्ग है। "रक्षिष्यतीति विश्वासो" भगवान् मेरी रक्षा अवश्य करेंगे, यह विश्वास रखना प्रपत्ति का तृतीय अङ्ग है। अपनी रक्षा के लिये भगवान् से प्रार्थना करने को "गोप्तृत्व वर्णन" कहते हैं पञ्चरात्रे यथा—"दासोऽस्मि शेषभूतोऽस्मि तवैव शरणं गतः। पराश्रितोऽहं दीनोऽहं पाहि मां करुणाकर ॥ १ ॥ यह प्रपत्ति का चतुर्थ अङ्ग है। अनुष्ठित सभी उपाय सिद्ध नहीं हो सकते, तथा पाप में प्रवृत्ति स्वाभाविकी है अतः कर्तृत्व विषय में अभिमान का सर्वथा परित्याग कार्पण्य कहलाता है। अर्थात् "अपराधी मेरे द्वारा अनुष्ठित कुछ भी सिद्ध नहीं होगा, बल्कि विघ्न होंगे" इस अनुसन्धान के द्वारा जो मन में ग्लानी है इसे दैन्य (दीनता) कहते हैं यही कार्पण्य शब्द का अर्थ है। यह दैन्य गोप्तृत्व वर्णन का भी अङ्ग है, प्रपत्ति वाक्यों में दीन शब्द पूर्वक याचना की जाती है। वाल्मीकीये यथा—बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्"। "आत्मनिक्षेपः" आत्मनिक्षेप प्रपत्ति का अङ्गी है अर्थात् प्रपत्ति के अङ्गों में मुख्य है। मेरी रक्षा का भार मेरे ऊपर नहीं है श्रीसीताराम जी के ऊपर है और उसके फल के भोक्ता भी वही हैं अर्थात् मुझे रक्षित समझकर प्रसन्नता भी उन्हीं को होगी, यद्यपि रक्षित व्यक्ति भी प्रसन्न ही होगा तथापि मुख्य प्रसाद रक्षक को होता है। ये समस्त भार भगवान को अर्पण कर देना ही" आत्मनिक्षेप है। यथाः—

स्वामिन् ते शेषभूतोऽहं ते भोग्यो रक्ष्य एव च। अकिंचनोऽनन्योपायस्तव कैंकर्यैकभोग्यकः ॥१॥ अगतिश्चानुकूल्योहं प्रातिकूल्येन वर्जितः। रक्षिष्यतीति विश्वासो स्वरक्षा प्रार्थना युतः ॥२॥ कृपणोऽहं दयासिन्धो सर्वपापकर स्तथा। स्वंच स्वीयं च यत् किञ्चित्त्वयि न्यस्यामि स्वीकुरू ॥ ३ ॥ न्यस्याम्यकिञ्चनः श्रीमन्नात्म रक्षाभरंत्वयि। मे त्वत्प्राप्ते रूपायस्त्वं कृपया भवराधव ॥ ४ ॥ एतच्चराचरं सर्वं यच्च यावच्च श्रूयते। सर्वमस्ति त्वदीयं हि श्रुतिभिश्चावगम्यते ॥५॥ न तादृशं दृढ़ं ज्ञानं मयि स्वामिन् प्रतिष्ठितम्। त्वन्तु सर्वं विजानामि सर्वं वस्तु ममेति च ॥ ६ ॥ संसार सागरे भूमन्तत्त्वद्वस्तु निमज्जितम्। पश्यसि त्वं समर्थः सन् कारणं किं वद प्रभो ॥७॥ चिदचिदात्मकं सर्वं मदीयं सत्यमस्ति वै। जीवोप्यसौ मदीयश्च ह्यभिमानान्निमज्जते ॥ ८ ॥ यावत्सत्वाभिमानोऽस्यं तावत्संसार सागरे। निमज्जतेऽभिमानात्तं ह्युद्धरिष्यामि चेद्वद ॥ ६ ॥ सत्यमहं मदीयं च सर्वमन्यत्तवास्ति वै। तथा तदभिमानो मे हेतु स्तव नियोजने ॥ १० ॥ अहं मदीयं चेत्येपयोऽभिमानो दुरत्ययः। त्वयि न्यस्यामि तं स्वामिन् त्वदीयं तं हि स्वीकुरु ॥ ११ ॥ निर्हेतुकृपया सर्वं स्वीकृत्य करुणानिधे। अहं ममाभिमानं मे निखिलं छिन्धिमूलतः ॥ १२ ॥ यदि नास्त्यानुकूल्यादिर्मयि स्वामिन्यथार्थतः। वद्धाञ्जलिपुटं दीनं रक्षमां शरणागतम् ॥१३॥ यथाहं च मदीयं च न मे रामस्य

तत्त्वतः । भातिमे हृदये सम्यक् तथा कुरु दयानिधे ॥ १४ ॥ त्वन्माययामलीमस हृदयं निर्मलं कुरु । येनाहं संविजानामि त्वां त्वदीयं च तत्त्वतः ॥१५॥ त्वत्कृपादृष्टिमात्रेण तद्धि सर्वं भविष्यति । न वै परिश्रमः कश्चित्तव तत्र दयानिधे ॥१६॥ प्रार्थयामि महादीनो दीनोद्धर कृपानिधे । एतद्देहावसाने मां स्वं प्रापय दयाकर ॥ १७ ॥ स्वदत्तज्ञानदीपेन नाशयाज्ञानजन्तमः । स्वतत्त्वज्ञानपूर्वं स्वार्थं स्वं प्रापय स्वयम् ॥१८॥ यानि सञ्चित् पापानि तानि नाशय मे प्रभो । अकृत्येषु प्रवृत्तिर्मेवारय बुद्धि प्रेरक ॥ १९ ॥ यथा निर्मुच्य पापेभ्यस्त्वत्प्राप्ति योग्यता भवेत् । मयिस्वामिन् हरे राम तथा त्वं मां स्वयं कुरु ॥ २० ॥ न मे पापविनिर्मोके नापि त्वत्प्राप्ति साधने । शक्तिस्तत्र समर्थस्त्वं स्वप्राप्ति साधनं भव ॥ २१ ॥ त्वाग्रे मां पतितं दृष्ट्वा श्रुत्वा च प्रार्थनामिमाम् । अङ्गीचकार श्रीराम तदप्यस्मीह निर्भरः॥२२

इन श्लोकों में जिस प्रकार का समर्पण है वह सब श्रीसीताराम जी को अर्पित करना हो "आत्मनिक्षेप नामक प्रपत्ति है ॥ ५१ ॥

वन्दामहे महेशानं चण्डकोदण्डखण्डनम् ।
जानकी हृदयानन्दचन्दनं रघुनन्दनम् ॥ ५२ ॥

चण्डकोदण्डखण्डनम् = रुद्र के धनुष को तोड़ने वाले । महेशानम् = परात्परतर । जानकीहृदयानन्दचन्दनम् = श्रीसीताजी के हृदय को चन्दन के समान आनन्द प्रदान करने वाले । रघुनन्दनम् = रघुवंशियों को आनन्द देने वाले श्रीरामजी को । वन्दामहे = हम लोग नमस्कार करते हैं ।

विशेष :-महेशानम् = महांश्चासावीशानश्च महेशानस्तम् । श्रुतौ यथा—तं देवतानां परमं च दैवतं तमीश्वराणां परमं महेश्वरम् । पतिं पतीनां परमं पुरस्ताद् विदामदेवं भुवनेशमीड्यम् ॥ महेशान में क्या कारण है—चण्डकोदण्डखण्डनम् = चण्डस्य रुद्रस्य कोदण्डं धनुः खण्डयतीतितम् । अर्थात् जगत् का प्रलय करने वाले शंकरजी के धनुष को भी जिन्होंने तोड़ दिया । अतः इस पद से श्रीरामजी का परमैश्वर्य व्यक्त किया । जो ईश्वराभिमानी रुद्र हैं उनका भी अतिक्रमण मनुष्य वेष में श्रीरामजी के द्वारा हुआ । तथा श्रीरामजी का परममाधुर्य भी द्योतित हुआ । श्रीजनक जी की प्रतिज्ञा का स्थापन, श्रीजानकीजी के दुःख को देखकर उसको असहमानत्व, श्रीरामजी के द्वारा आनन्द करत्वादि भी चण्डकोदण्डखण्डनम् से व्यक्त हुआ । जानकी हृदयानन्द चन्दनम् श्रीरामानुरागिणी श्रीजानकी जी के हृदय को चन्दन के समान शीतल करने वाले । रघुनन्दनम = महारानी श्रीजानकीजी की प्राप्ति द्वारा माता पिता भ्राता आदि रघुवंशियों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीरामजी को । वन्दामहे = वयं वन्दामहे । बहुवचन ग्रन्थ के प्रवर्तक जो श्रीनारदादि हैं उनके तात्पर्य से है अथवा श्रीरामजी की उपासना में बहुमान प्रदर्शन है ॥ ५२ ॥

उत्फुल्लामल कोमलोत्पलदलश्यामाय रामायनः ।
कामाय प्रमदा मनोहर गुण ग्रामाय रामात्मने ॥
योगारूढ़ मुनीन्द्र मानससरोहंसाय संगारविध्वंसाय ।
स्फुरदोजसे रघुकुलोत्तंसाय पुंसे नमः ॥ ५३ ॥

उत्फुल्ल = विकसित, अमल = उज्ज्वल, निर्मल, कोमल = मृदुल, उत्पलदल = श्याम कमल, श्यामाय = नीलकमल के सदृश । नः = हम लोगों का । रामाय = श्रीरामजी के लिये । कामाय = सर्वविध मनोरथ पूर्ण करने वाले, या अभिलाषा के विषय, या-अप्राकृत कामदेव के लिये । प्रमदा = युवतिजनों के लिये, मनोहर = मन को अपहरण करने वाले, गुणग्राम = गुण समूह है जिनमें । रामात्मने = श्रीजानकी जी में ही आत्मा-मन है जिनका एवं भूताय । योगारूढ़ = योग श्रीरामजी के भक्तियोग में आरूढ़ = विराजमान, मुनीन्द्र = सनत्कुमार नारदादि के, मानससरः = मन रूपी सरोवर (जलाशय) के, हंसाय = हंसरूप पक्षी के समान सर्वदा विहार करने वाले । संसारविध्वंसाय = प्राणियों के विषय वासना रूप संसरण अथवा जन्म मरण रूप संसार, विध्वंसाय = विशेषरूप से नाश करने वाले । स्फुरदोजसे = देदीप्यमान, बल या तेज है जिसका । रघुकुलोत्तंसाय = रघुकुल के भूषण (शिरोरत्न) पुंसे = पुरुष रूप में वर्तमान श्रीरामजी के लिये । नमः = नमस्कार है ।

विशेष :—श्रीरामजी को परमोपास्य, तथा मोक्षप्रद कहा जा रहा है यथा नमोऽस्तुरामदेवाय, जगदानन्दरूपिणे, अर्थात् स्वरूप तथा सौन्दर्यादि गुणों से जगत् को आनन्द देने वाले श्रीरामजी कैसे हैं, उत्फुल्ल = नवीन खिले हुये निर्मल कमलदल के समान श्यामवर्ण वाले अतएव कामाय मनो नेत्र वाणी आदि का विषय न होने पर भी केवल स्पृहणीय, सतत् अभिलषणीय । यथा—रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारकम् । अतः प्रमदा मनोहर गुण ग्रामाय । पुंसे = परमपुरुष के लिये । यथा—वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षात् रामायणात्मना ॥ ५३ ॥

भवोद्भवं वेदविदो वरिष्ठमादित्य चन्द्रानिल सुप्रभावम् ।
सर्वात्मकं सर्वगत स्वरूपं नमामि राम तमसः परस्तात् ॥ ५४ ॥

भवोद्भवम् = भव = प्रधान उसके, उद्भव = कारण, अर्थात् उपादानकारण । वेदविदोवरिष्ठम् = वेदविद् = ब्रह्मा, उनसे वरिष्ठ = श्रेष्ठ, जगत् की सृष्टि करने वाले अर्थात् ब्रह्मा को जगत् की सृष्टि करने के उपयुक्त सामर्थ्य प्रदान करने वाले (श्रीरामजी) आदित्यचन्द्रानिलसुप्रभावम् = आदित्य = सूर्य चन्द्रमा वायु में शोभनप्रभाव = शक्ति प्रदान करने वाले । सर्वात्मकम् = सबके आत्मा अर्थात् कारणावस्था में सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट कार्यावस्था में स्थूल चिदचिद् शरीर वाले, सर्वगतस्वरूपम् = सर्वव्यापी स्वरूप है जिसका । तमसः = प्रकृति अर्थात् लीलाविभूति से परस्तात् = परे अर्थात् नित्यविभूति में विराजमान, रामं = श्रीरामजी को । नमामि = नमस्कार है ॥ ५४ ॥

विशेष :—भवोद्भवम् = भवति अस्माज्जगदिति भवः प्रधानम् उसका उद्भव अर्थात् उत्पत्ति स्थान। तमः शब्द वाच्य सूक्ष्म अचिद् शरीर वाले श्रीरामजी से प्रधान उत्पन्न हुआ, तथा प्रधान से निखिल प्रपञ्च की उत्पत्ति हुई। श्रुतौ यथा—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः, आकाशाद्वायुः, वायोस्तेजः, तेजस आपोऽद्भ्यः पृथिवी।

तम शरीर वाले श्रीरामजी (आत्मा) से प्रधान, तथा प्रधान शरीर वाले श्रीराम जी से आकाशादि समस्त प्रपञ्च उत्पन्न हुआ। अन्यथा श्रीराम जी में विकारित्व की आपत्ति हो जायेगी। श्रुतौ यथा—तत्तेजोऽसृजद्। अर्थात् तमः शरीरक ब्रह्म द्वारा प्रधान, प्रधान शरीरक ब्रह्म द्वारा आकाश, वायु, तथा वायु से तेज की सृष्टि हुई। प्रदर्शित दोनों श्रुतियों में एक वाक्यता की उपपत्ति गुणोपसंहार न्यायेन करनी चाहिये। उपादान कारण कहकर निमित्त कारण को कह रहे हैं--वेदविदोवरिष्ठम् = श्रीरामजी की अनुग्रह से ही ब्रह्मा जगत् की सृष्टि में समर्थ हुये। आदित्यादि भी श्रीरामजी के प्रभाव से ही जगद् के अधिकारी हुये। सर्वात्मकम् = सबके अन्तर्यामी भगवान् श्रीरामजी ही हैं। श्रुतौ यथा—य आत्मनितिष्ठन् आत्मान्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्। अन्तर्यामी श्रुति तथा श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण द्वारा भी जगत् श्रीरामजी का ही शरीर कहा गया है। वा० रा० यथा--

जगत्सर्वं शरीरन्ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ॥ सर्वगतस्वरूपम् = सर्वव्यापि स्वरूपं यस्यतम्। श्रुतौ यथा--यत् किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा। अन्तर्बहिश्चतत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥१॥ तमसः परस्तात् = प्रकृतेः परमित्यर्थः।

विशेषण रूप प्रकृति के विशेष्य स्वरूप भूत होकर नित्यविभूति में विराजमान्। पंचरात्रे यथा- द्विहस्तमेक वक्त्रं च रूपमाद्यमिदं हरेः। परन्तद् द्विभुजं प्रोक्तमित्यादि। जो आदि रूप है उसीको श्रीरामतापनीय में इस प्रकार कहा गया है यथा--रमन्तेयोगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। वेद में परब्रह्म पद से वेदान्त में अद्वितीय स्वसमाभ्यधिकरहितत्वादि पदों से जो कहे गये हैं वे ही नारायण मत्स्यकूर्मादि बहुत रूपों को उपासकों के कार्यार्थ धारण करते हैं, उन्हीं को "नारायणं जगन्नाथमित्यादि पदों से कहा गया है। वे ही निरञ्जन निराकार द्वैत तमः परादि विशेषणों से विशेषित "परात्परतरन्तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम्। तथा रघूत्तमत्वेनाविर्भूत हैं। उपसंहार में भी उसी तत्त्व की दिशा में ही निर्देश है। यथा--

त्वमक्षरं परं ज्योतिः त्वमेव पुरुषोत्तमः। त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन ॥१॥ परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि रामं महतो महान्तम्। राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥२॥

श्रीव्यास वाल्मीकि आदि के गुरु श्रीनारदजी द्वारा परतत्त्वादि पदों से विशेषित राजीवलोचन श्रीराम जी ही सर्ववाच्यवाचक रूप से प्रतिपादित हैं। समस्त नारायणादि शब्दों के वाच्य श्रीरामजी, उनका वाचक रामनाम या श्रीराममन्त्र है अतः वह भी उन्हीं के समान नाराणजगन्नाथादि पदों का विशेष्य भूत हुआ। स्मृतौ यथा — विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः। तथापि मूलमन्त्रस्ते सर्वेषां बीजमक्षयम् ॥१॥ न कहिये कि ज्यं कुरोत्पत्ति में बीज का नाश हो जाता है उसी प्रकार मूलमन्त्र की भी आपत्ति होगी इसके लिये बीज का विशेषण अक्षय कहा गया, अर्थात् श्रीराम रूप को कहने वाले जो नारायणादि शब्द हैं उनका कारण षडक्षर मन्त्र का एक देशभूत बीजमन्त्र या मूलमन्त्र ही है और वह कभी नाश न होने के कारण अक्षय कहलाता है।

श्रुति स्मृतियों ने श्रीराम शब्द को सब शब्दों का वाच्य कहा उसीको श्रीनारद जी ने भी नारायणादि पदों से विशेषित किया, तथा श्रीरामजी को सर्व शब्द वाच्यत्वेन एवं सर्वरूपी होने के कारण सबका कारण बतलाकर "निदानं प्रकृतेः परम्" 'अद्वैतं तमसः परम्' "नमामि रामं तमसः परस्तात्" इत्यादि पदों द्वारा श्रीराम जी को त्रिपाद् विभूति का स्वामी सिद्ध किया, और उन्हीं का आविर्भाव होता है यह भी स्पष्ट हो गया, यथा—परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम् ॥५४॥

निरञ्जनं निः प्रतिमं निरीहं निराश्रयं निष्कलमप्रपञ्चम् ।
नित्यं ध्रुवं निर्विषयस्वरूपं निरन्तरं राममहं भजामि ॥ ५५ ॥

निरञ्जनम्=अज्ञान रहित अर्थात् शुद्धचिदेक रस। निःप्रतिमम्=प्रतिमा= रहित। निरीहम्=पुरुषार्थ प्राप्ति के लिये चेष्टा रहित। निराश्रयम=आधाररहित अर्थात् अपनी महिमा के आधारभूत। निष्कलम्=कलामुहूर्त आदि कालावयव से परे अर्थात् काल की अधीनता से रहित स्वरूप वाले। अप्रपञ्चम्=प्रपञ्च=भृत्यादि द्वारा सेवा का विस्तार वह नहीं है जिसमें अर्थात् थोड़ी सेवा से ही सन्तुष्ट होने वाले। अथवा प्रपञ्च =संसार उसके धर्म से रहित। नित्यम्=तीनों काल में एक रस। ध्रुवम=अचल। निर्विषयस्वरूपम्=प्राकृत विषय से रहित है स्वरूप जिसका अर्थात् प्रकृतिलेप रहित। निरन्तरम=अन्तर रहित अर्थात् सतत। रामम्=योगियों के चित्त में रमण करने वाले श्रीरामजी को। अहं भजामि=मैं भजन करता हूँ॥ ५५ ॥

विशेष :—श्रीरामजी के स्वरूपनिष्ठ स्वभाव को कहते हुये प्रणाम किया जा रहा है। निरञ्जनम् पद से श्रुत्युक्त सभी पदों का स्मरण है यथा— निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।" निःप्रतिमम्=यथा न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः। अथवा श्रीरामजी का नाममन्त्र उपमा रहित है। यथा—

सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठं वैष्णवमुच्यते । गाणपत्येषु शैवेषु शाक्त सौरेष्वभीष्टदम् ॥१॥ वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः। गाणपत्यादि

मन्त्रेषु कोटि कोटि गुणाधिकाः ॥२॥ मन्त्रस्तेष्वप्यनायास फलदोऽयं षडक्षरः। षडक्षरसमो मन्त्रो जगत्स्वपिन विद्यते ॥३॥ जपतःसर्वं वेदांश्च सर्वं मन्त्रांश्च पार्वति। तस्मात्कोटि गुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥४॥

पुनः श्रीरामजी कैसे हैं निराश्रयम्=निराधार हैं अर्थात् उनका आधार उनकी महिमा ही है यथा—भगवो स कस्मिन प्रतिष्ठितः स्वमहिम्नीति। अप्रपश्चम् अर्थात् स्वल्पीयसी सेवा से सन्तुष्ट होने वाले यथा—कथंचिदुपकारेण कृतैनैकेन तुष्यति। न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥१॥५५॥

भवाब्धि पोतं भरताग्रजन्तं भक्तप्रियं भानुकुल प्रदीपम्।
भूतत्रिनाथं भुवनाधि पत्यं भजामिरामं भवरोग वैद्यम् ॥ ५६ ॥

भवाब्धिपोतम्=संसार रूपी सागर से पार करने वाले (नौका)। भरताग्रजन्तम्=श्रीभरत जी के ज्येष्ठ भ्राता, अर्थात् श्रीभरत जी के द्वारा आराधनीय। भक्तप्रियम् भक्तियुक्त पुरुषों के प्रिय, अर्थात् भक्तों के अधीन। भानुकुलप्रदीपम्=सूर्य कुल के उत्कृष्ट प्रकाशक। भूतत्रिनाथम्=प्राणियों के तीनों काल में रक्षक, अर्थात् अभय प्रदान करने वाले। भुवनाधिपत्यम्=लोकों के अधिपति, अर्थात् सर्वेश्वर। भवरोग वैद्यम्=संसार (जन्ममरण) के रोग का नाश करने वाले। रामम=श्रीरामजी को। भजामि=भजता हूँ। अर्थात् जन्ममरणादि रूप संसार से पार करने की सामर्थ्य श्रीरामजी में हो है अतएव भजन करने के योग्य हैं।

विशेषः—भरताग्रजन्तम्=श्रीभरतलाल जी की भक्ति के विषय तो हैं ही, अन्य व्यक्ति भी यदि अपनी सेवा का विषय बनाना चाहें तो बना सकते हैं इसलिये कहा भक्तप्रियम्=भक्तों के प्रिय अर्थात् हृदय हैं अथवा भक्त हो हृदय हैं जिनके, अर्थात् भक्तों के हृदय में उपासना के अनुरूप मूर्तिमान होकर निवास करने वाले। सर्वत्र भगवान् व्यापकतया रहते हैं भक्त के हृदय में मूर्तिमान होकर रहते हैं। यथा-ये भजन्ति मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्। गीता। अथवा श्रीमद्भागवते यथा—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजन प्रियः ॥ १ ॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्। मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥२॥ मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शिनः। वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥३॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना। श्रियं चा त्यन्त की ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥४॥ येदारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तु मुत्सहे ॥ ५ ॥ इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम्। आत्मान मनुये चेह रायो वै पशवो गृहाः। ६॥ विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेन विश्वतोमुखम्। भजंत्यनन्या भक्त्या तान्मृत्यो-

रति पारये ।। ७ ।। मत्सेवया प्रतीतञ्च सालोक्यादि चतुष्टयम् । नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः किमन्यत्काल विप्लुतम् ।। ८ ।।

श्रीरामजी का भजन करने वाले निकृष्ट कुल में ही क्यों न जन्म लिये हों वे उत्तम कुल के भक्त सदृश ही प्रिय हैं। यथा--सुरोऽसुरोवाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमीश्वरम्। भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तरानानयत्कोशलान् दिवम् ।। १ ।। न जन्मनूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः । तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकारसख्येवत लक्ष्मणाग्रजः ।। २ ।। भानुकुल प्रदीपम् श्रीरामजी शौर्यवीर्यादि द्वारा प्रकाशमान् सूर्य के वंश के भी प्रकाशक हैं अर्थात् जगत् को प्रकाश देने वाले हैं । श्री रा० च० मानसे यथा—जगतप्रकाश्य प्रकाशक रामू। माया धीश ज्ञान गुण धामू ।। भुवनाधिपत्यम् से ब्रह्मादि के पति सूचित किया। श्रुतौ यथा—एष सर्वेश्वरः एष भूतपालः। श्रीरामजी को भवरोग के वैद्य कहकर भव (संसार) के रहने पर भी उसके रोग का नाश कहा गया है अर्थात् भक्तजन संसार में रहते हुये भी संसार की बाधाओं से विनिर्मुक्त हैं ।।५६

सर्वाधिपत्यं समरङ्गधीरं सत्यं चिदानन्दमयं स्वरूपम् ।
सत्यं शिवं शान्तिमयं शरण्यं सनातनं राममहं भजामि ।। ५७ ।।

सर्वाधिपत्यम्=त्रिपाद् विभूति पर्यन्त, आधिपत्य अर्थात् स्वामित्व है जिसका, समरङ्गधीरम्=समरभूमि में गमन करने वाले व्यक्तियों में धीर अर्थात् निपुण (कौशल-प्राप्त)। सत्यम्=अबाधित स्वरूप अर्थात् सदा एक रूप से विराजमान। अर्थात् कार्यावस्था में तथा कारणावस्था में एक तरह। चिदानन्दमयस्वरूपम्=दूसरे से अप्रकाशित अर्थात् अपने लिये स्वयमेव प्रकाशमान स्वरूप तथा आनन्द स्वरूप है जिसका। अर्थात् अन्य उपकरण से प्रकाशित नहीं होते, और न सुखी ही अन्य सामग्री से होते हैं। शिवम् =कल्याण सम्पादक अथवा मङ्गल के स्थान। शान्तिमयम=क्षोभरहित, शरण्यम्= अपराधी शत्रु को भी अभय प्रदान करने वाले। सनातनम्=अनादि । रामम्=योगियों के चित्त में विश्राम करने वाले। (श्रीरामजी का) अहं भजामि=मैं भजन करता हूँ ।।५७।।

विशेष :—भुवन से बचे हुये भाग के भी श्रीरामजी स्वामी हैं यह कहने के लिये यह श्लोक प्रस्तुत है। सर्वाधिपत्यम=सर्वेषु त्रिपाद् विभूति पर्यन्तेषु आधिपत्यं स्वामित्वं यस्यतम। केवल ब्रह्मादि प्रभुत्व को कहा जा चुका है भुवनाधिपत्य से अतः त्रिपाद् विभूति के स्वामी हैं यह अर्थ ही सर्वाधिपत्य शब्द का होना चाहिये। शिवम्=मङ्गल के भवन। यथा--यदा तमस्तन्न दिवान रात्रिर्न सन्नचासच्छिव एव केवलः इस श्वेताश्वेतरोपनिषद् में शिवादि शब्द वाच्यता परम कारण में ही कही गई है। उसी परम तत्त्व को "न तस्य प्रतिमाऽस्ति" द्वारा महद्यश सम्पन्न कहा गया है। परम कारणत्व दो में सम्भव नहीं अतः शिवादि शब्द वाच्यता श्रीरामजी में ही है। यथा – विश्वरूपस्य ते राम विश्वेशब्दा

ही वाचकाः। तथापि मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां बीजमन्नायम्। शरण्यम्=शरणे रक्षणे साधु अर्थात् जो सतत् सबकी रक्षा कर सके, यथा श्रीमद् वा० रामायणे – आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणंगतः। अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥ १ ॥ आनयैनं हरिश्रेष्ठदत्तमस्याभयं मया। विभीषणो वा सुग्रीवो वा यदि रावणः स्वयम् ॥२॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।३। सनातनम्=अनादिकालसे प्रसिद्ध। रामम्=राम नाम। लीला विभूति में आविर्भाव के अन्तर रामनाम हुआ इसकी व्यावृत्ति सनातनम् पद से की जा रही है अर्थात् नित्यविभूति में विराजमान् रहने पर भी राम ही नाम है। यथा श्रीराम ता० 'स्वभूर्ज्ज्योतिर्मयोनन्त रूपी स्वेनैव भासते। रेफारूढ़ा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च ॥ अतः षडक्षर वाच्य वाचक श्रीरामनाम में भी स्वप्रकाश, ब्रह्मस्वरूपत्व, आदि होने के कारण अनादित्व सिद्ध हो गया ॥ ५७ ॥

कार्य क्रिया कारण मप्रमेयं कविं पुराणं कमलायताक्षम्।
कुमार वेद्यं करुणामयन्तं कल्पद्रुमं रामम्हं भजामि ॥ ५८ ॥

कार्यक्रियाकारणम्=कार्यरूप जगत् की क्रिया (निर्माण) उसके कारण। अप्रमेयम्=रूप गुण ज्ञान शक्त्यादि परिच्छेद रहित अर्थात् अपरिमित ज्ञान शक्त्यादि सम्पन्न। कविम्=सर्वज्ञ। पुराणम्= सनातन, अनादि। कमलायताक्षम्= कमलदल के सदृश उज्ज्वल प्रसन्न कर्णपर्यन्त विशाल नेत्र वाले। कुमारवेद्यम्=सनकादि द्वारा ध्यान के विषय। करुणामयम्=करुणरस प्राचुर्य अर्थात् निर्हेतु की दया दृष्टि सम्पन्न, अनवरत दया की वृष्टि करने वाले। कल्पद्रुमम्=कल्पवृक्ष अर्थात् उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, सभी प्रकार के भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले। तं राममहं भजामि=एवं गुण विशिष्ट जगत्प्रसिद्ध श्रीरामजी का मैं भजन करता हूँ ॥ ५८ ॥

विशेष :- श्रीरामजी के अनादित्व का कारण प्रस्फुटित किया जा रहा है कार्यक्रियाकारणम्=कार्यस्य जगतः या क्रिया निर्मितिः तस्य कारणम् हेतुम्। यथा श्रुतौ—स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजद्। यदिदं किञ्चन। जब जगत् अनादि है तो उसके कारण श्रीरामजी में सुतरां अनादित्व सिद्ध हो गया। अचिन्त्य जगत् के रचयिता की शक्ति अचिन्त्य प्रकाशन के लिये कहा, अप्रमेयम्=इयत्ता रहित अर्थात् अपरिच्छिन्न ज्ञान शक्त्यादि सम्पन्न ॥ ५८ ॥

त्रैलोक्यनाथं सरसीरुहाक्षं दयानिधिं द्वन्दविनाश हेतुम्।
महाबलं वेदनिधिं सुरेशं सनातनं राममहं भजामि ॥ ५९ ॥

त्रैलोक्यनाथम्=तीनों लोक के स्वामी। सरसीरुहाक्षम्=कमल के सदृश नेत्र वाले। दयानिधिम्=कृपा के समुद्र अर्थात् अकारण करुणावरुणालय। द्वन्दविनाशहेतुम्=सुख दुःख आदि संसार के धर्मों के विनाश करने वाले। महाबलम्=अपरिमित

पराक्रम, वेदनिधिम्=वेद के आधारभूत अथवा वेद की मर्यादा को पालने वाले। सुरे-शम्=देवताओं के भी देव । सनातनं राममहं भजामि=सर्वदा विराजमान भगवान् श्रीरामजी का मैं भजन करता हूँ ॥ ५६ ॥

विशेष :- कमलायताक्षं सरसीरुहाक्षम् की पुनरुक्ति से श्रीरामजी की नयन-माधुरी की आराधना अपने में व्यक्त की। महाबलम्=अप्रमेय पराक्रम। विभीषण शरणागति के समय सुग्रीव को भगवान् ने अपने बल का कुछ परिचय दिया है। वा०रा० यथा—

सुदुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः । सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं ममाशक्तः कथंचन ॥ १ ॥ पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां ये च राक्षसाः । अंगुल्यग्रेण तान्हन्यामिच्छन्हरिगणेश्वर ॥ २ ॥

वेदनिधिम्=प्रलयकाल में वेद की रक्षा करके उसका ज्ञान ब्रह्मा को देते हैं। यथा—"यो वै वेदांश्च प्रहिणोति" । भूतत्रिनाथं सर्वाधिपत्यं त्रैलोक्यनाथमित्यादि पदों की दुरुक्ति से श्रीरामजी को विभूतिद्वय का स्वामी सिद्ध किया गया। सनातनं राममहं भजामि की दुरुक्ति से अपने इष्ट देवता रूप से श्रीरामजी का ही अंगीकरण द्योतित किया। करुणामयं दयानिधिम् की दुरुक्ति से अत्यन्त कारुणिक होने के कारण झटिति मनोरथ पूरकत्व श्रीरामजी में सूचित किया ॥ ५६ ॥

वेदान्तवेद्यं कविमीशितारमनादिमध्यान्तमचिन्त्यमाद्यम् ।
अगोचरं निर्मलमेकरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥ ६० ॥

वेदान्तवेद्यम्=सब उपनिषदों के प्रतिपाद्य । कविम्=सर्वज्ञ । ईशितारम्=सबके नियन्ता। अनादिमध्यान्तम्=आदि मध्य अन्तरहित । अचिन्त्यम्=ध्यान का अविषय, अर्थात् गुरु द्वारा जानने के योग्य। आद्यम्=सबके पूर्वसिद्ध अर्थात् परमकारण अगोचरम्=प्राकृत इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य। निर्मलम्=प्रकृति के मल से रहित। एकरूपम् =सदा एकरस अर्थात् विकारशून्य। तमसः परस्तात्=तमः प्रधान प्रकृति से परे अर्थात् नित्यविभूति में वर्तमान। रामम्=नित्यमुक्त जीवों में रमण करने वाले श्रीराम जी को। नमामि=नमस्कार करता हूँ।

विशेष :-श्रुतियों में जिसे औपनिषद् पुरुष कहते हैं यथा—"तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्" आदि श्रुति समूह द्वारा जानने के योग्य भगवान् श्रीरामजी ही हैं, अतएव वेदान्तवेद्यम्=वेद के अन्त भाग (उपनिषद्) द्वारा ही जाने जाते हैं। अतएव सब उपनिषद् कारण वाक्य गत ब्रह्म, परब्रह्म, अक्षरपुरुष, विष्णु, महाविष्णु, नारायण, वासुदेव हरि, शिव, महेश्वर, रुद्र ईशान, निरञ्जन, निराकार, आदि शब्द वाच्यता श्री नारदजी द्वारा श्रीराम जी में ही कही गई है। यथा—"नारायणं जगन्नाथम्" इत्यादि । भगवान् वेदव्यास जी ने श्रीरामस्तवराज को

वेदों का सार कहकर श्रीनारदजी कथित अर्थ को दृढ़ किया है। इसमें हेतु है, ईशितारम् = सर्वनियन्ता सर्वेश्वर । सर्वनियन्तृत्व, सर्वेश्वरत्व, दो में नहीं हो सकता। अतः कारण वाक्यगत सर्ववाचक वाच्यत्व श्रीरामजी में ही उपपन्नतर है। अतः आह अनादिमध्यान्तम्=आदि मध्यावसान शून्य। स्वसदृश द्वितीय न रहने के कारण ही- अचिन्त्यम् = अर्थात् अत्यन्त विलक्षण रूप होने के कारण तर्कादि द्वारा सर्वथा असाध्य हैं। यथा--"तर्काप्रतिष्ठानात्" वेदान्त सूत्र। किन्तु "आचार्यवान् पुरुषो वेद" इस श्रुति प्रमाण से गुरूपदेशगम्य है। श्रीरामजी का रूप ही आद्य रूप है यथा- द्विहस्तमेकवक्त्रञ्च रूपमाद्य मिदं हरेः" यह पंचरात्र वचन प्रमाण है। वह रूप अगोचर है अर्थात् मन वाणी का विषय नहीं है "यन्मनो न मनुते" "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" निर्मलम् = प्राकृत मल रहित है अतएव एक रूपम् = भक्त को इच्छा के अनुरूप ही सदा एक से रहते हैं। अथवा षोडशवर्ष की अवस्था में सर्वदा विद्यमान हैं, ध्यान मञ्जरी यथा— षोडश वर्ष किशोर राम नित सुन्दर राजें ॥ ६० ॥

अशेषवेदात्मकमादि सञ्ज्ञमजं हरिं विष्णु मनन्तमूर्तिम् ।
अपारसंवित्सुखमेकरूपं परात्परं राममहं भजामि ॥ ६१ ॥

अशेषवेदात्मकम् = सम्पूर्ण वेद ही आत्मा है जिसकी, अथवा सम्पूर्ण वेदों में आत्मा = स्वरूप प्रतिपादित है जिसका, अर्थात् सर्ववेदवेदनीय। आदि संज्ञकम = सब नामों से पूर्व सिद्ध (श्रीराम नाम)। अजम् = जन्म (शरीर संयोग) रहित। हरिम्=भक्त के दुःख हरण करने वाले। विष्णुम् = स्वरूप तथा गुण द्वारा सर्व व्यापक। अनन्तमूर्तिम = संख्या तीत मूर्ति हैं जिनकी, अथवा परिच्छेद रहित मूर्ति है जिसकी। अपार संवित्सुखम् = पूर्ण ज्ञान आनन्द है जिसका, अर्थात पूर्णज्ञानानन्द धर्मक। एकरूपम् = प्रधान (श्रीराम) रूप ही है जिनका, अर्थात् अनेक अवतारों में श्रीराम ही प्रधान है । परात्परम = परब्रह्मादि से पर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट, अथवा सबके कारण। राममहं भजामि = श्रीरामजी का भजन करता हूँ पूर्ववत् ॥ ६१ ॥

विशेष :—केवल उपनिषदों द्वारा ही वेदनीयता श्रीरामजी में नहीं है अपितु अशेषवेदात्मक हैं अर्थात् सर्व वेद वेद्य हैं। अशेष वेदात्मकम = अशेषेषु सम्पूर्णेषु वेदेषु आत्मा प्रतिपाद्यतया स्वरूपं यस्यतम् ।यथा—सर्वेवेदायत्पदमामनन्ति तत् विष्णोः परमं पदमिति श्रु ति में विष्णुपद व्यापनीशील अर्थ वाला है, अर्थात व्यापक श्रीरामजी का परम स्वरूप है। पद्यते गम्यते पद शब्द स्वरूपपरक है। आदि संज्ञकम् = प्रथमा संज्ञा यस्य, अर्थात् भगवन्नामों में रामाख्या सर्व प्रथम नाम है। विष्णु आदि नाम व्यापकादि गुण कर्म द्वारा परब्रह्म के वाचक हैं, श्रीराम नाम साक्षात् सच्चिदानन्दात्मक परब्रह्म का वाचक है। अतएव विष्ण्वादि सहस्रनाम तुल्य राम नाम को कहा गया है । अजम = जन्मरूप विकार से रहित हैं। यह अन्य षड्र्मियों का उपलक्षण है अर्थात् "अस्ति, जायते, वर्द्धते,

विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति'' ये छः प्रकार के विकार श्रीरामजी में नहीं हैं। श्री दशरथ जी से जन्म होना, आविर्भाव होना है, कर्मनिमित्तक गर्भवास नहीं होता। गीता में यथा—जन्म कर्म च मे दिव्यं यो मां वेत्ति तत्त्वतः। विष्णुम्=स्वरूप एवं गुण के द्वारा सर्व व्यापक, बाल्मी० यथा—ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गे लोके यथा पुरा। येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम॥ १॥ अनन्तमूर्तिम्=अनेक मूर्ति हैं जिनकी। पञ्चरात्रे यथा—

रामस्यैव कलांशाद् वै ह्यवतारा भवन्तिहि। कोटि कोटिश्च कार्यार्थे सिंधौ वीचीव वै मुने॥ १॥ वासुदेवादि मूर्तीनां चतुर्णां कारणं परम्। चतुर्विंशति मूर्तीनामाश्रयः शरणं मम॥ २॥ सर्वावताररूपेण दर्शन स्पर्शनादिभिः। दीनानुद्धरतेयोऽसौ स रामः शरणं मम॥ ३॥ ६१॥

तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं स्वतेजसापूरित विश्वमेकम्।
राजाधिराजं रविमण्डलस्थं विश्वेश्वरं राममहं भजामि॥६२॥

तत्त्वस्वरूपम्=परतत्त्व स्वरूप। पुरुषम्=सबके अन्तर्यामी। पुराणम्=सनातन। स्वतेजसापूरितविश्वम्=अपने प्रभाव से विश्व की जिसने रक्षा की है। (यह उत्पत्ति संहार का भी उपलक्षण है) एकम्=मुख्य। राजाधिराजम्=प्रकाश करने वाले सूर्यादि के भी प्रकाशक। रविमण्डलस्थम्=सूर्य मण्डल में स्थित। विश्वेश्वरम्=जगत् के ईश्वर। राममहं भजामि=श्रीरामजी का मैं भजन करता हूँ।

विशेष :—तत्त्वस्वरूपम् अर्थात् "यत्परं यद् गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम्। तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम्। इस श्रीरामस्तवराज श्लोक में कथित परमतत्त्व। पुरुषम्=सम्पूर्ण शरीरों में निवास करने वाले। यथा—"अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्ये आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते॥ १॥ स्वतेजसापूरितविश्वमेकम्=रविमण्डल में स्थित होकर जिसने अपने प्रभाव से विश्व को पूरित अर्थात् प्रकाशित कर दिया है। यथा—सहस्रकोटिवह्नीन्दु लक्षकोट्यर्क सन्निभम्। मरीचिमण्डले संस्थं रूपमाद्यमिदं हरेः। न कहें कि सूर्यादि भी प्रकाशक हैं अतएव कहा, एकम्=मुख्य। "एकोऽन्यार्थे प्रधाने च" यहां एक प्रधान वाचक है अर्थात् सूर्यादि भी उनके दिये हुये प्रकाश से ही प्रकाशक कहलाते हैं। इसी अर्थ को दृढ़ कर रहे हैं। राजाधिराजम=राजन्ते प्रकाशन्त इति राजानः सूर्यादयः तेषामधिराजम् अर्थात् प्रकाश प्रदातारम्। अतएव रविमण्डलस्थम् कहा। "सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्" अथवा पञ्चरात्र में कहा है। यथा—द्विहस्तमेक वक्त्रञ्च लक्ष कोट्यर्क सन्निभम् मरीचि मण्डले संस्थं रूपमाद्यमिदं हरेः॥ ६२॥

लोकाभिरामं रघुवंशनाथं हरिं चिदानन्दमयं मुकुन्दम्।
अशेष विद्याधिपतिं कवीन्द्रं नमामि रामं तमसः परस्तात्॥ ६३॥

लोकाभिरामम् = अत्यन्त कमनीय विग्रह द्वारा लोकों को आनन्द प्रदान करने वाले। रघुवंशनाथम् = रघुवंश में श्रेष्ठ। गुण तथा रूप द्वारा दृष्टि एवं चित्त का अपहरण करने वाले। चिदानन्दमयम् = चित्स्वरूप वाले तथा आनन्द स्वरूप वाले। मुकुन्दम् = मुक्ति प्रदान करने वाले। अशेषविद्याधिपतिम् = सभी विद्या के प्रवर्तक, अर्थात् सम्पूर्ण विद्या (ज्ञान) के स्वामी। कवीन्द्रम् = सर्वज्ञ शिरोमणि। तमसः परस्तात् = तमोगुण प्रधान प्रकृति से परे नित्य विभूति में बिराजमान। रामम् = श्रीरामजी को। नमामि = नमस्कार करता हूं॥ ६३॥

विशेष :—लोकाभिरामम् "नमोऽस्तु रामदेवाय जगदानन्द रूपिणे" श्लोक में कथित जगत् को आनन्द देने वाले रूप से सम्पन्न हैं॥ ६३॥

योगीन्द्र संघैः शतसेव्यमानं नारायणं निर्मलमादि देवम्।
नतोऽस्मि नित्यं जगदेकनाथमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ ६४॥

योगीन्द्र संघैः = योगेश्वर समूह द्वारा। शतसेव्यमानम् अनेक प्रकार से आराधनीय, अर्थात् अपनी-अपनी परंपरा के अनुसार, तथा भावना के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से आराध्यमान। नारायणम् = महार्णव में शयन करने वाले। निर्मलम् = प्रकृति के हेय गुणों से रहित, अर्थात् प्रकृतिलेप रहित, अथवा भक्तजनों को मायामल दूर करने वाले। आदिदेवम् = सब देवताओं के प्रथम देव। जगदेकनाथम् = जगत् के मुख्य स्वामी। आदित्यवर्णम् = स्वप्रकाश स्वरूप। तमसः परस्तात् = तमः शब्द से कही जाने वाली सूक्ष्म प्रकृति से परे, अर्थात् प्रकृति मण्डल से परे (त्रिपाद विभूति में विराजमान) रामम् = श्रीरामजी को। नित्यम् सर्वदा नतोऽस्मि = नमस्कार करता हूँ॥६४

विशेषः—योगीन्द्रसंघैः = योगीन्द्राणां संघैः समुदायैः, शतसेव्यमानम् = अनेक विधियों से (अपनी अपनी रुचि तथा योग्यता के अनुसार) सेवा के विषयभूत। नारायणम् = नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः। तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः इस निरुक्ति के अनुसार सबके अन्तर्गत रहते हुये भी उपासकों के कार्यार्थ एक काल में अनेक स्थानों पर आविर्भूत। निर्मलम् = सर्वान्तर्गत होने पर भी उन सबके दोषों की छुआछूत से रहित॥ ६४॥

विभूतिदं विश्वसृजं विराजं राजेन्द्रमीशं रघुवंशनाथम्।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमूर्तिं ज्योतिर्मयं राममहं भजामि॥६५॥

विभूतिदम् = उपासना के अनुसार ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, अथवा कर्मानुरूप फल प्रदान करने वाले। विश्वसृजम् = जगत् की सृष्टि करने वाले, अर्थात् विश्व के निमित्त कारण। विराजम् = विराड् के अन्तर्यामी, चिद् अचिद् की अपेक्षा विशेषरूप से प्रकाशमान। राजेन्द्रम् = राजेश्वर। ईशम् = ब्रह्मादि के भी नियन्ता। रघुवंशनाथम् रघुवंश के पालक। अचिन्त्यम् = यह इस प्रकार है इत्यादि ज्ञान का अविषय। अव्यक्तम्

इयत्ता रहित मूर्ति स्वरूप है जिसका, अर्थात् विभिन्नदेश में अनेक ध्यान करने वालों के अन्तःकरण में विभिन्न रूप से एक काल में आविर्भूत। ज्योतिर्मयम्=स्वप्रकाश। रामम्=श्रीरामजी को। अहं भजामि=मैं भजता हूँ ॥६५॥

विशेष :—इस प्रकरण का उपक्रम "यत्परं यद्गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम्। तदेव परमं तत्त्वं कैवल्य पद कारणम्" यहाँ हुआ था। ज्योतिर्मयं राममहं भजामि" यहां उपसंहार है। इसके बीच "राममहं भजामि" का बार-बार अभ्यास (कथन) है, अतः श्रीरामजी ही उपास्य हैं यह दृढ़ किया गया। श्रीरामजी गुणातीत, ज्योतिस्वरूप, परमतत्त्व कैवल्य प्रदान करने वाले हैं। मुक्त जीव भगवद्धाम नित्यविभूति को प्राप्त करके अपहत पाप्म-त्वादि गुणों को ग्रहणकर लेते हैं। उनमें केवल सृष्टिके उत्पत्ति, पालन, प्रलय की सामर्थ्य नहीं होती, परन्तु और समस्त भोग जात श्रीरामजी के ही समान कालादि से अनियन्त्रित प्राप्त हो जाते हैं। श्रुतौ यथा--"एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" ॥ ६५ ॥

अशेष संसार विकार हीनमादिस्तु संपूर्ण सुखाभिरामम्।
समस्तसाक्षी तमसः परस्तान्नारायणं विष्णुमहं भजामि ॥६६॥

अशेषसंसारविकारहीनम्=संसार के सम्पूर्ण विकारों से रहित, आदिः=सबके पूर्व, अर्थात् परम कारण। सम्पूर्ण सुखाभिरामम्=समग्र सुख में अभिरमण करने वाले, अर्थात् लौकिक सुख के उपकरणों द्वारा सुख की प्राप्ति नहीं है, दिव्य उपकरणों से सुख है, अर्थात् आत्मा राम हैं। समस्तसाक्षी=जड़ चेतन के साक्षात् देखने वाले। तमसः परस्तात्=तम शब्द वाच्य सूक्ष्म प्रकृति से परे, अर्थात् नित्य विभूति में विराजमान। नारायणम्=क्षीर समुद्र में शयन करते हुये जगत् की सृष्टि करने वाले। विष्णुम्=व्यापन शील अर्थात् सबमें व्यापक (श्रीरामजी का) अहं भजामि=मैं भजन करता हूँ ॥६६॥

विशेषः---अशेषसंसारविकारहीनम्=संसार के (गर्भ, जन्म, बढ़ना, विपरिणाम होना, अपक्षय, मरण) इन सभी प्रकार के विकारों से रहित। नारायणम्=भगवान् श्रीरामजी का प्रथम अवतार जगत् की सृष्टि करने के लिये नारायण रूप से हुआ है। भागवते यथा—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः। सम्भूत षोडश कलमादौ लोक सिसृक्षया ॥१॥ यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रामुपेयुषः। नाभि हृदाम्बुजादासीद् ब्रह्मा लोक पितामहः ॥२॥

श्रीरामस्तवराज में "निदानं प्रकृतेः परम्" अद्वैतं तमसः परम्" "तमसा परस्तात्" आदि अनेक बार शब्दों की आवृति द्वारा नित्यविभूतिस्थ श्रीराम जी को सिद्ध किया गया। श्रीरामजी की उपासना में तीन मन्त्र हैं जिन्हें मन्त्रत्रय (रहस्यत्रय)

कहते हैं। "बीज मन्त्र पूर्वक रामाय नमः" षडक्षर, "श्रीरामः शरणं मम" अष्टाक्षर तथा "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम" यह शरणागति मन्त्र है। पञ्चरात्र में कहा है यथा – "महिमामन्त्रराजस्य साक्षाद् गिरजापतिः। जानाति भगवाञ्छम्भुर्ज्वलत्पावक लोचनः ॥१॥६६॥

मुनीन्द्रगुह्यं परिपूर्णमेकं कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम्।
परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि रामं महतो महान्तम् ॥६७॥

मुनीन्द्रगुह्यम्=मुनीश्वरों से भी गोपनीय। परिपूर्णम्=स्वतः रहित, अथवा स्वेच्छयागृहीतविग्रह। एकम्=मुख्य, समानाधिक्य रहित। कलानिधिम्=कलाओं के आश्रयभूत। कल्मषनाशहेतुम्=जन्ममरण का बीज जो पाप उसके नाशक। परात्परम्=परब्रह्मादि उनसे भी परे अर्थात् उनके उत्पन्न करने वाले, सर्वोत्कृष्ट। यत्परमंपवित्रम्=स्मरण मात्र से अविद्या पर्यन्त समस्त मल का निरास करने वाले अत्यन्त पावन। महतः=आकाश काल दिशाओं के परम महत परिमाण से भी। महान्तम्=अत्यधिक परिमाण वाले, अर्थात् परम महत् परिमाण वाले पदार्थों के भीतर बाहर भी स्वसत्ता से विराजमान। रामम्=श्रीराम जी को। नमामि=नमस्कार करता हूँ।

विशेष :– समस्त मुनिजन श्रीरामतत्त्व को ही स्फुटतया परात्परत्वेन क्यों नहीं मानते। मुनीन्द्र गुह्यम="नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्" एक भी मुनि ऐसे नहीं हैं जिनका वचन प्रमाण न हो, क्योंकि मुनि उपदेश आप्तवचन है। मुनिजन ही "रागाद् वशादपि नान्यथावादी" अर्थात् रागादि के कारण भी मिथ्या भाषण नहीं करते। आप्तवचन का प्रामाण्य आगमप्रमाण के अन्तर्गत है, अतः मुनि कथन में प्रमात्व सिद्ध है, तब जगत्कारणवाद के विचार में मुनियों का एकमत क्यों नहीं है। किसी ने मानमातृमेय ईशितव्यादि भेद प्रपञ्च नानाशक्तिमती अविद्या के द्वारा रज्जु में सर्प के समान भासित, तथा समष्टि व्यष्टि का अधिष्ठानभूत कूटस्थ विज्ञानैकरस ब्रह्म है वही समष्ट्यवच्छिन्न ज्ञानैश्वर्यादि महिमतयाभासमान ईश्वर, हिरण्यगर्भ वैश्वानरादि संज्ञक होता है। व्यष्ट्यवच्छिन्न (प्राज्ञ, तैजस, विश्व संज्ञक होकर) देव, मनुष्य, तिर्यगादि देह में) ज्ञानादिमत्तया नानात्वेन भासमान होकर जीवजात होता है। दूसरे मुनि प्रकृष्टसत्वगुणोपादान निमित्तक स्वतन्त्र, तथा प्रधान परिणाम विशेष नियम निर्वाहार्थ, सर्वैश्वर्य मर्यादक रूप से आदर करते हैं। अपरमुनि स्वाधीन त्रिविध चेतनाचेतन स्वरूप स्वाभाविक निरवधिकातिशय ज्ञान बलैश्वर्य वीर्य शक्ति तेज प्रभृति सकल कल्याण गुणगण महार्णव पुरुष विशेष श्रीरामजी को ही जगत् का कारण मानते हैं। अतएव मुनीश्वरों से भी यह रहस्य गोपनीय है। इसलिये इस विषय में मतैक्य नहीं है। बाल्मीकीये यथा – त्वं हि लोक गतिर्वीर न त्वां जानन्ति केचन। ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वं परिग्रहाम् ॥ श्रुति भी इसी अर्थ को दृढ़ करती है। यथा—

तद्वेदगुह्योपनिषद् सुगूढं तद्ब्रह्मा वेद ते ब्रह्मयोनिम्। ये पूर्वं देवा ऋषयश्च तद्विदुस्तेतन्मया अमृता वै बभूवुः ॥ कलानिधिम्—यथा—रामस्यैव कलांशाद्दै अवतारा भवन्ति हि। कोटि कोटिश्च कार्यार्थे सिन्धौ वीचीव वै मुने ॥६७॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा।
आदित्यादिग्रहाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥६८॥

हे रघुनन्द=रघुवंशियों को आनन्द देने वाले। ब्रह्मा=जगत् की सृष्टि करने वाले चतुर्मुख। विष्णुश्च=और क्षीर समुद्र के स्वामी, जगत् के पालन करने वाले। देवेन्द्रः=इन्द्र। तथा देवता=और वायु आदि देवता। च=और आदित्यादिग्रहाः= सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, ये नवग्रह। त्वमेव=आप ही हैं॥ ६८॥

विशेष :- माधुर्य तथा ऐश्वर्य विशिष्ट श्रीरामजी की स्तुति करके, ब्रह्मादि को उनकी विभूति का निर्देश करते हुये, स्वेतर निखिल वैशिष्ट्य से श्रीरामजी में अद्वितीयत्व सिद्ध करते हुये स्तुति की जा रही है। अर्थात् श्रीरामजी जगत् के सृष्टि पालन प्रलय हेतु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, रूप को धारण करते हैं। देवता, देवताओं के स्वामी सूर्यादि नवग्रह रूप को भी श्रीरामजी ही धारण किये हैं। जैसे दण्डवान् पुरुष का दण्ड से भेद नहीं है क्योंकि दण्डवान् में दण्ड भी प्रविष्ट है, यद्यपि दण्ड, पुरुष में स्वरूप एवं धर्मकृत भेद है पर विशेषण विशिष्ट होने से ऐक्य है। इसी प्रकार विशेषणभूत ब्रह्मादि का विशेष्यभूत श्रीरामजी के साथ अभेद है। अतः विशिष्टाद्वैत भी उपपन्न हो गया।

तापसा ऋषयः सिद्धाः साध्याश्च मरुतस्तथा।
विप्रा वेदास्तथा यज्ञाः पुराणं धर्मसंहिताः ॥६९॥

तापसाः=तपश्चर्या में तत्पर तपस्वीजन। ऋषयः=विश्वामित्रादि मन्त्र के साक्षात्कार करने वाले। सिद्धाः=श्रीकपिल मुनि आदि। साध्यः=साध्य संज्ञक देवयोनि विशेष। तथा मरुतः=पवन देवता जिनकी संख्या उनचास है। विप्रः=मनुष्यों में सतोगुण प्रधान, यज्ञ के अनुष्ठाता। वेदाः=ऋक्, यजुः साम, अथर्ववेद। तथा यज्ञाः=और ज्योतिष्टोमादि। पुराणम्=अष्टादश संख्या वाले पुराण। धर्मसंहिताः = धर्मशास्त्र, वशिष्ठ याज्ञवल्क्यपराशरादि स्मृति। इन सब पदोंका भी अन्वय "त्वमेव रघुपुङ्गव" इस अग्रिम श्लोक में है॥ ६९॥

विशेष :-पुराणम्=पुराणों में निम्नलिखित दश बातें होनी चाहिये :—

१—सर्ग (सृष्टि वर्णन), २—विसर्ग (विशेष सृष्टि), ३—स्थान (ब्रह्माण्ड वर्णन), ४—पोषण (जीवों के धर्म कर्म सदाचारादि), ५— ऊति (जीवों की वासना),

६--मन्वन्तराधिपतियों के चरित्र तथा वंश विस्तार। ७--भगवान के अवतार, चरित्र। ८-- निरोध (शमदमादि योगमार्ग), ९--मुक्ति। १०--आश्रय (भगवान का आश्रय) यथा-

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूर्तयः। मन्वन्तरेशानु कथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥१॥ दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्। वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥२॥ भाग० २।१०।१२।

पुराण सर्व सामान्य व्यक्तियों के लिये ही कहा गया है। जिन्हें वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है वे वेदार्थ पुराण द्वारा जान लें। यथा नारदीये—वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने। वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः ॥१॥ पुराणमन्यथा कृत्वा तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्। सुशान्तोऽपि सुदान्तो न गतिं क्वचिदाप्नुयात्॥२॥ इतिहास (महाभारत) पुराण के द्वारा वेद का ही उपबृंहण है। इतिहास पुराण के न जानने वाले से वेद भयभीत होता है। यथा-इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥१॥ धर्मशास्त्र तथा वेद में जो नहीं है वह पुराणों में वर्णित है साङ्गसशिरस्क वेद का अध्ययन करने वाला यदि पुराण नहीं जानता तो वह पण्डित नहीं है। स्कान्दे यथा—

यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः। उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत् पुराणैः प्रगीयते ॥१॥ योवेद चतुरो वेदान् साङ्गो पनिषदो द्विजाः। पुराणं नैव जानाति न च स स्याद् विचक्षणः॥ प्र०ख० २।९२--९३॥

इन पुराणों की संख्या अठारह है :— १-ब्रह्मपुराण, २-पद्मपुराण, ३-विष्णुपुराण, ४-शिवपुराण, ५-श्रीमद्भागवत, ६-नारदीयपुराण, ७-मार्कण्डेयपुराण, ८-अग्निपुराण, ९--भविष्यपुराण, १०--ब्रह्मवैवर्तपुराण, ११--लिङ्गपुराण, १२-वाराह पुराण, १३--स्कन्द पुराण, १४-वामनपुराण, १५-कूर्मपुराण, १६--मत्स्यपुराण, १७-गरुड़पुराण, १८--ब्रह्माण्ड पुराण। कल्पभेद से इनमें से कुछ पुराण तथा उपपुराण भी माने गये हैं। १--देवीभागवत २--वायुपुराण को भी यदि पुराणों में ले लिया जाय तो सत्ताईस उपपुराण रह जाते हैं जो पुराणों के समान ही प्रामाणिक हैं। इनके नाम ये हैं :— १--सनत्कुमार, २--नरसिंह, ३-बृहन्नारदीय, ४-शिवधर्मोत्तर, ५-दुर्वासस, ६--कापिल, ७-मानव ८-उशनस, ९-वारुण, १०--आदित्य, ११-कालिका, १२-साम्ब, १३-नन्दकेश्वर, १४--सौर, १५--पाराशर, १६--माहेश्वर, १७--वाशिष्ठ, १८--भार्गव, १९--आदि, २०--मुद्गल, २१--कल्कि, २२-देवी, २३--महाभागवत, २४-बृहद्धर्मोत्तर, २५-परानन्द, २६--पशुपति, २७-हरिवंश। इन पुराणों में भगवान के अवतार तथा भगवद् विग्रह का विस्तृत वर्णन है अतः इन सब रूपों में भगवान् श्रीरामजी ही हैं॥ ६९

वर्णाश्रमास्तथा धर्मा वर्णधर्मास्तथैव च।
यक्षराक्षस गन्धर्वा दिक्पाला दिग्गजादिभिः ॥७०॥

सनकादिमुनिश्रेष्ठास्त्वमेव रघुपुङ्गव ।
वसवोऽष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादश स्मृताः॥७१॥

वर्णाश्रमः=वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) आश्रमः=(ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास) तथा धर्माः=आश्रमों के धर्म। तथैव वर्णधर्मा=ब्राह्मणधर्म, क्षत्रिय धर्म, वैश्यधर्म, शूद्रधर्म। यक्ष राक्षस गन्धर्वाः=यक्ष गन्धर्व (देवयोनि विशेष) राक्षस= देवताओं से विरोध करने वाले असुर। दिग्गजादिभिः=दिशाओं के हाथी, उनके साथ, दिक्पालाः=दशदिशाओं के पालक देवता, इन्द्र, वरुण, कुबेरादि॥७१॥ हे रघुपुङ्गव= रघुकुल श्रेष्ठ। सनकादि मुनिश्रेष्ठाः=मुनियों में श्रेष्ठ (प्राचीन) सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार। त्वमेव=आप ही हैं। वसवो अष्टौ=आठ वसु-धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास। त्रयः कालाः=भूत, भविष्यद् वर्तमान। रुद्रा एकादशस्मृताः=ग्यारह रुद्र, अज, एकपाद्, अहिवध्न, पिनाकी अपराजित, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हरण, ईश्वर। इन सब रूपों में आप ही विराजमान हैं॥७१॥

विशेष :—वर्णधर्माः=जिनके अनुष्ठान से सामाजिक व्यवस्था सुचारु रूप से चलती है तथा भुक्ति मुक्ति एवं ऐहिक, आमुष्मिक समस्त वाञ्छित उपलब्धियां प्राप्त हो जाती हैं। यथा—

यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः। अध्यापनं चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः॥१॥ दानमध्ययनं यज्ञो धर्मं क्षत्रियवैश्ययोः। दण्डं युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते॥२॥ शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां वर्णसाधनम्। कारुकर्म तथा जीवः पाकयज्ञोऽपि धर्मतः॥३॥ क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च। आर्जवं चानुसूया च तीर्थानुसरणं तथा॥४॥ सत्यं सन्तोष आतिथ्यं श्रद्धाचेन्द्रिय निग्रहः देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः॥५॥ अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकल्कता। सामासिकमिमंधर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मुनिः॥६॥ कूर्म अ० ६॥

केवल ब्राह्मण के लिए विशेष अनुष्ठातव्य। यथा—

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव उत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः। तस्यधर्मं प्रवक्ष्यामि तं योग्यं देशमेव च॥१॥ कृष्णसारो मृगोयत्र स्वभावात्तु प्रवर्तते। तस्मिन् देशे वसन् धर्मं कुरुते ब्राह्मणोत्तमः॥२॥ अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा दानं प्रतिग्रहश्चैव कर्मषट्कमिहोच्यते॥३॥ अध्यापनं त्रिविधं धर्मार्थं चात्मकारणम्। शुश्रूषाकारणञ्चेति त्रिविधं परिकीर्तितम्॥४॥ नैषामन्यतमो वापि दृश्यते यत्र मानवे। तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा॥५॥ योग्यानध्यापयेच्छिष्यान् यज्ञानपियोजयेत्। विदितान् प्रतिग्रहानिच्छेद् गृहधर्म प्रसिद्धये॥६॥ वेदमेवाभ्यसे

न्नित्यं शुचौ देशे समाहितः । यजेत् यज्ञं यथा शक्त्यादद्यात् वित्तानुसारतः ।।७।। नित्यं नैमित्तकं धर्म कर्म कुर्यात् प्रयत्नतः । गुरुशुश्रूषणञ्चैव यथान्यायमतन्द्रितः ।।८।। सायं प्रातरुपासीत विधिनाग्निं द्विजोत्तमः । कृतस्नानः प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ।। ९ ।। अतिथिश्चागतं भक्त्या पूजयेच्छक्तितोगृही । अन्यानभ्यागतान् विप्रान् पूजयेदविरोधतः ।।१०।। स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः। सत्यवादी जितक्रोधः स्वधर्म निरतोभवेत् ।।११।। अकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादे नैव रोचयत् । प्रियां हि तां वदेत् वाचं परलोकाविरोधिनीम् ।। १२ ।। एष धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः । धर्ममेवन्तु यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ।। १३ ।।

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के लिये सेवनीय धर्म क्रम से कहे जा रहे हैं। यथा—

राजा च क्षत्रियश्चैव प्रजा धर्मेण पालयेत् । कुर्यादध्ययनं सम्यक् युग युक्तो यथा विधिः ।।१।। दद्याद्दानं द्विजाग्रेभ्यो धर्म बुद्धिसमन्वितः । देव ब्राह्मण भक्तश्च पितृकार्य परस्तथा।।२।। धर्मेण वै जयाकांक्षी अधर्मस्य निवर्जयेत् । उत्तमां गति मा प्रोति क्षत्रियो ह्येवमाचरन् ।।३।। गोरक्ष्यं कृषि वाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथा विधि । दानं धर्म यथा शक्त्या द्विज शुश्रूषणन्तथा ।।४।। लोभदम्भविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः । स्वदारनिरतो दान्तः परदार विवर्जितः ।।५।। धनैर्विप्रान् समभ्यर्च्य यज्ञकाले त्वयाचितः । अप्रमत्तः स्वधर्मेषु वर्तेत देह पातनात् ।।६।। यज्ञाध्ययन दानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।पितृकार्यश्च तत्काले नारसिंहार्चनं तथा ।।७।।एतद्वैश्यस्य कर्मोक्तं स्वधर्ममनु तिष्ठतः ।एतदासेव्यमानस्तु मुक्तः स्यान्नात्र संशयः।।८।। वर्णत्रयस्य शुश्रूषांकुर्याच्छूद्रःप्रयत्नतः ।दासवत् ब्राह्मणानान्तु विशेषेण समाचरेत् ।।९।। अयाचितः प्रदातास्यात् कृषिं वृत्त्यर्थ माश्रयेत् । पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवानतन्द्रितः ।। १० ।। शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् । धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ।।११।। स्वदारेषु रतिश्चैव परदार विवर्जितः । पुराण श्रवणं विप्रान्नारसिंहस्य पूजनम् ।। १२ ।। तथा विप्र नमस्कारस्तथा सत्रं दिने दिने । सत्यं सम्भाषणञ्चैव रागद्वेष विवर्जनम् ।।१३।। इत्थं कुर्वस्तथा शूद्रो मनो वाक्काय कर्मभिः । स्थानमैन्द्रमवाप्नोति त्यक्तपापः सपुण्यकृत् ।।१४।।

यक्षराक्षसगन्धर्वाः—यक्ष्यते पूज्यते यक्षः ब्रह्मवैवर्त में यक्षों के निम्नलिखित स्वरूप का वर्णन है। यथा—

आजग्मुर्यक्षनिकराः कुबेरवर किङ्कराः। शैलज प्रस्तरकराः व्यञ्जनाकारमूर्तयः ।। १ ।। विकृताकार वदनाः पिङ्गलाक्षा महोदराः । स्फटिकारक्तवेशाश्च दीर्घस्कन्धाश्च केचन ।। २ ।। यक्षगण के नाम निम्न हैं। यथा—प्रचेतसः सुतायक्षाः तेषां नामनि मेश्रृणु।

केवलो हरिकेशश्च कपिलः काञ्चनस्तथा ॥ १ ॥ मेघमाली च यक्षाणां गण एष उदाहृतः ॥ यक्षोपासना ऐहिक हित तो अवश्य करता है परन्तु इस उपासना से अधोगति भी ध्रुव है। वाराही तन्त्रे तथा—यक्षाणां यक्षीणाञ्च पैशाचीनाञ्च साधनम् । भूतवेतालगान्धर्वं मारणोच्चाटनानि च । अधोगमनमेतेषां साधने ऐहिकं हितम् ॥ ७० ॥ ७१ ॥

तारका दश दिक् चैव त्वमेव रघुनन्दन ।
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च नागा नद्यस्तथा द्रुमाः ॥७२॥

तारकाः—अश्विनी, भरणी आदि सत्ताईश नक्षत्र । दशदिक् चैव=प्राची, प्रतीची, उदीची, अवाची, ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ऊर्ध्व, अधः । सप्तद्वीपाः= जम्बु, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक, पुष्कर । समुद्राश्च=लवण, क्षीर, दधि, घृत, सागरादि । नागाः=अनन्त, वासुकि, कम्बल, कर्कोटक, आदि । नद्यः=भागीरथी, यमुना, सरयू, नारायणी आदि तथा द्रुमः- वृक्ष, तृण गुल्मलता वीरुध आदि भेद से नाना प्रकार के । रघुनन्दन=हे रघुवंशियों को आनन्द देने वाले । त्वमेव=आप ही हैं ॥ ७२ ॥

विशेष : नागः के स्थान पर कहीं नगाः पाठ है । नगाः=सुमेरु, विन्ध्याचल आदि पर्वत ॥ ७२ ॥

स्थावरा जङ्गमाश्चैव त्वमेव रघुनायक ।
देवतिर्यग् मनुष्याणां दानवानां तथैव च ॥ ७३ ॥
माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुवल्लभ ।
सर्वेषां त्वं परब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥ ७४ ॥

स्थावराः=समस्त अचर प्राणी । जङ्गमा=चरप्राणी । रघुनायक=हे रघुनायक (रघु श्रेष्ठ) त्वमेव=आप ही हैं। देवतिर्यङ् मनुष्याणाम्=देवतः पशु, पक्षी मनुष्यों के। तथैव दानवानाम्=दनुपुत्र राक्षसों के शरीर रूप में तथा आत्मा रूप में भी आप ही विराजमान हैं। रघुवल्लभ=हे रघुवंशियों के प्रिय श्रीरामजी। माता=जननी। पिता= जनक (पालक)। तथा भ्राता=और भाई । त्वमेव=आप ही हैं । सर्वेषाम्=चराचर प्राणियों के । परब्रह्म=सृष्टि, पालन प्रलय, करने वाले। त्वम्=आप हैं। हि=इसलिये। सर्वम्=यह चराचर रूप जगत् । त्वन्मयम्=प्रधान (विशेष्य) जो आप हैं आपका ही शरीर है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

विशेष :—तिष्ठतीति स्थावराः अर्थात् चलने की सामर्थ्य से रहित, वृक्ष पर्वतादि । जङ्गमाः=गच्छतीति अर्थात् जो चलने की सामर्थ्य युक्त हैं मनुष्य पशु पक्षी आदि। त्वं परब्रह्म=कारणपद से सुने गये विष्णु, नारायण, हरि आदि विग्रह में आप ही पर सबसे उत्कृष्ट अर्थात् सबके कारण हैं॥ ७३ । ७४ ॥

त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ।
त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किञ्चन ॥ ७५ ॥
शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परब्रह्म सनातनम् ।
राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥ ७६ ॥

त्वमक्षरम्=सबके आधार तथा नियन्ता होने के कारण, आपका क्षरण कभी नहीं होता अतः अक्षर (नाशविकार रहित) हैं। परंज्योतिः=उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप अर्थात् मुक्त जीवों के प्राप्य। त्वमेव=आप ही। पुरुषोत्तमः=पुरुषों में उत्तम (श्रेष्ठ) हैं। त्वमेव=आप ही। तारकं ब्रह्म=संसार से पार करने वाले बृहत् गुणयुक्त (हैं)। त्वत्तः=आप से भिन्न। अन्यत्=कोई। किंचन=कहीं पर (अक्षर पर ज्योति पद वाच्य) नैव=नहीं है शान्तम्=वशीकृत अन्तःकरण। सर्वगतम्=सबमें गत प्राप्त अर्थात् अन्तर्यामी। सूक्ष्मम्=अणीयान्। परब्रह्म=कारण। सनातनम्=सदा वर्तमान। राजीवलोचनम्=कमलदल के सदृश नयन वाले। जगत्पतिम्=संसार के पालन करने वाले। रामम्=श्रीरामजी को। प्रणमामि=प्रणाम करता हूँ॥ ७६ ॥

विशेष :—अक्षर परज्योति पदवाच्य तारक संज्ञक राजीवलोचन श्रीरामजी ही हैं। श्रीरामजी से भिन्न कोई परज्योति पदवाच्य नहीं है इसको दिखाते हुये उपसंहार में श्रीरामजी को प्रणाम कर रहे हैं। अक्षरम्=न क्षीयते न क्षरतीति अक्षरस्तम्। जिनका कभी भी क्षरण (नाश) न हो। जिन्हें सदैव पूर्णत्व का प्रतिपादन श्रुतियाँ करतीं हैं। यथा

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

परंज्योतिः=मुक्त जीवों के एकमात्र प्राप्य। श्रुतौ यथा="न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतोभाति कुतोऽयमग्निः। तमेवानुभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।" परब्रह्म पदवाच्य ही परंज्योतिः है उसीको प्राप्त करके मुक्त जीवों के अपहत पाप्मत्वादि गुणों का आविर्भाव हो जाता है। श्रुतौ यथा— "एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्यस्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते।" परब्रह्म--श्रीनारदजी ने श्रीरामजी को परात्परतर ब्रह्म कहा है श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का भी यही सिद्धान्त होना चाहिये क्योंकि महर्षि वाल्मीकि श्रीनारदजी के ही शिष्य हैं। तात्पर्य निर्णय के लिये शास्त्रों में छः उपकरण हैं। यथा--उपक्रमोपसंहारावभ्यासोपूर्वता फलम्। अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये॥ १॥ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के उपक्रमोपसंहार के द्वारा भगवान् श्रीरामजी ही परब्रह्म माने गये हैं। यथा--तस्य भार्यासु तिसृषु ह्री श्री कीर्त्युपमासु च। विष्णोः पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम॥ १॥ एवं दत्त्वावरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान। मानुषे चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः॥ २॥ श्रीदशरथजी की श्री, ह्री, कीर्ति के सदृश तीनों रानियों में भगवान विष्णु अपने को चार भागों में करके पुत्रत्व को प्राप्त हुये। देवताओं ने भगवान् की प्रार्थना की विष्णु भगवान

देवताओं को वरदान देकर मनुष्य रूप से अवतीर्ण होने के लिये अपनी जन्मभूमि के लिये चिन्ता (ध्यान) किया कि हमको कहाँ पर अवतीर्ण होना है। इन श्लोकों में विष्णु पद आया है विष्णु भगवान् की ही देवताओं ने प्रार्थना की उन्होंने ही वरदान दिया (अपने अवतीर्ण होने का आश्वासन दिया) और वे ही चक्रवर्ती महाराज की तीनों रानियों में अपने को विभक्त करके अवतीर्ण हुये। यह विचार करना है कि यह विष्णु पद भगवान् श्रीरामजी के लिये आया है या चतुर्भुज भगवान् विष्णु के लिये। यहाँ विष्णु भगवान् को आत्मवान् कहा है। आत्मा शब्द का "आत्मा देहे धृतौ जीवे स्वभावे च परमात्मनि" इस अनुशासन से देह परक अर्थ नहीं कह सकते, क्योंकि भगवान् विष्णु की प्रसिद्धि चार भुजाओं से है। युद्ध का प्रकरण न होने के कारण आत्मशब्द धृति अर्थ को भी नहीं कहेगा। भगवान् का सात्विक स्वभाव प्रसिद्ध है अतः स्वभाव परक भी आत्म शब्द नहीं है। अतः परिशेषात् परमात्मा अर्थ वाला ही आत्मशब्द प्रयुक्त है। विष्णु भगवान् की आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी श्रीरामजी ही हैं। क्योंकि विष्णु, भगवान् हैं जीव नहीं है। इसलिये विष्णु भगवान् के कारण श्रीरामजी ही का वरदान देना और अवतीर्ण होना प्रतीत होता है। यद्यपि उपक्रम में विष्णु पद को देखकर सन्देह होना स्वाभाविक है तथापि उपसंहार से यह बिल्कुल निर्णीत हो जाता है कि उपक्रम का विष्णु शब्द भगवान् श्रीरामजी के स्वरूपपरक व्यापकता तथा गुणपरक व्यापकता को बतलाने के लिये ही प्रयुक्त है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के उपसंहार में विष्णुकारणताबोधक ब्रह्माजी के वचन ही कारणत्व के रूप में उपपन्नतर हैं। यथा—

संक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि। महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ १ ॥ मायया जनयित्वा त्वं द्वौ च सत्वौ महाबलौ। मधुश्च कैटभं चैव ययोरस्थिचयैः कृताः ॥ २ ॥ इयं पर्वतसंबाधा मेदिनी चाभवत्तदा। पद्मे दिव्यार्क संकाशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ॥ ३ ॥ प्राजापत्यं त्वया कर्म मयि सर्वं निवेदितम्। सोऽहं सन्यस्तभारो हि त्वामुपासे जगद्गुरुम् ॥ ४ ॥ रक्षां विधत्स्व भूतेषु ममतेजस्करो भवान्। ततस्त्वमपि दुर्धर्षस्तस्माद्भावात्सनातनात्॥५॥ रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्। सत्व विश्वास्य मानासु प्रजासु जगतांवर, रावणस्य वधाकांक्षी मानुषेषु मनोदधाः ॥६॥

अतः भगवान् श्रीरामजी ही क्षीरशायी नारायण तथा वैकुण्ठवासी विष्णुरूप को यथासमय धारण करते हैं। इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी श्रीरामजी को परशुराम तथा विष्णु रूप धारण करना लिखा है। यथा—"मुख्यत्वाद् विश्वबीजत्वात्तारकत्वात्महेश्वरः। स्वदंशैः स्वीकृतं रामहास्याभिर्नामते त्रिभिः ॥ १ ॥

श्रीव्यासउवाच—ततः प्रसन्नः श्रीरामः प्रोवाच मुनिपुङ्गवम्।
तुष्टोऽस्मि मुनिशार्दूल वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥ ७७ ॥

श्रीव्यासजी ने कहा—ततः=श्रीनारदजी की प्रार्थना करने के बाद। मुनिपुङ्गवम् =मुनियों में श्रेष्ठ श्रीनारदजी को। प्रसन्नः श्रीरामः=प्रसन्न होकर श्रीरामजी ने। प्रोवाच =कहा। मुनिशार्दूल=हे मुनिश्रेष्ठ (श्रीरामजी के स्वरूप, गुण, विभूति के यथार्थ ज्ञाता होने के कारण) मुनियों में श्रेष्ठ हैं। वरम् = वाञ्छित वस्तु को। वृणीष्व = मांगिये ॥ ७७ ॥

विशेष—श्रीराम जी अपने भक्त को अर्थ धर्म काम मोक्ष भगवत् प्रेम आदि सब कुछ देते हैं। और उसका योग क्षेम भी स्वयं वहन करते हैं। अतः सम्पूर्ण कामनाओं से युक्त, या समस्त कामनाओं से रहित भक्त परब्रह्म की ही आराधना तीव्रभक्ति योग द्वारा करे भाग० यथा - अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् पुरुषं परम् ॥ १ ॥ भगवान् श्रीरामजी के प्रसन्न हो जाने पर उनके लिये उनको अदेय कुछ भी नहीं रहता। रा०च०मा० यथा—जन कहँ नहिं अदेय कछु मोरे। श्रीमद् भाग० यथा—तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे। अर्थात् भगवद्भक्त को इच्छा ही करना है उसके लिये अप्राप्तव्य कुछ भी नहीं रहता। क्योंकि समस्त ऋद्धि सिद्धि वैभव के मूल भगच्चरणों को ही उसने स्वाधीन कर लिया है। भागवते यथा-- सर्वासामपि सिद्धीनाम् मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ अतएव भगवान ने कहा कि अपने उत्तम अभीष्ट (वरदान) को आप माँग लें ॥ ७७ ॥

श्रीनारद उवाच—यदि तुष्टोमि सर्वज्ञ श्रीराम करुणानिधे।
त्वन्मूर्ति दर्शनेनैव कृतार्थोहं ममेप्सितम् ॥ ७८ ॥

श्रीनारदजी ने कहा -

सर्वज्ञ=सब कुछ जानने वाले। करुणानिधे=हे करुणा के सागर। श्रीराम =हे श्रीरामजी। यदि तुष्टोऽसि=यदि आप मेरे ऊपर (अपनी करुणा के वशवर्त्ती होकर) प्रसन्न ही हैं। (मुझे वरदान भी देने को आप प्रतिज्ञा कर चुके हैं) त्वन्मूर्तिदर्शनेनैव= आपकी द्विभुज (नितान्त कमनीय) मूर्ति (नीलकमल दल के समान) के दर्शन से ही (नेत्रों को तृप्ति न होने वाले अवलोकन से ही) अहं कृतार्थः=मैं कृत कृत्य हो चुका हूँ। ममेप्सितम्=मुझे प्राप्त होने के लिये इष्ट (आपकी मूर्ति का दर्शन ही है अतः आपका सर्वदा साक्षात्कार हो यही वरदान दीजिये ॥ ७८ ॥

विशेष—वरदान देने की इच्छा व्यक्त करने वाले भगवान श्रीराम जी के प्रति नारद जी ने कहा। सर्वज्ञ=सर्वं जानाति (हे सर्वज्ञ) आप सब कुछ जानते हैं मुझे अणिमादि सिद्धियाँ नहीं चाहिये, जिससे मेरा सर्वत्र अव्याहत प्रवेश हो या सर्वत्र संचरण हो। करुणानिधे=आप अकारण करुणा के अपार समुद्र हैं अर्थात् मेरे अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हैं। त्वन्मूर्तिदर्शनेनैव=आपकी मूर्ति के दर्शन से, यथा-"अणोरणीयं समनन्तवीर्यं प्राणेश्वरं राममसौ ददर्श" मैं कृतार्थ हो गया हूँ अर्थात् परमपुरुषार्थ को

प्राप्त कर चुका हूँ। "नारायणं जगन्नाथं" आरम्भ होने वाली स्तुति के अनन्तर "अन्तर्धानं जगामाथ पुरतस्तस्य राघवः" से रामजी का अन्तर्हित होना कहा गया है। नारदजी भगवान् श्रीरामजी का साक्षात्कार प्राप्त करने के ही लिये "रामं तुष्टाव" श्रीरामजी को प्रसन्न किया। भगवान् श्रीराम जी वरदान देने के लिये पुनः नारदजी के दृष्टिगोचर हुये, इस प्रकरण से ऐसा प्रतीत होता है॥ ७८॥

धन्योऽहं कृतकृत्योहं पुण्योहं पुरुषोत्तम।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफल च मे ॥७६॥

पुरुषोत्तम=हे पुरुषों में श्रेष्ठ (श्रीरामजी) अहम=मैं। अद्य=आज। धन्यः=धन्य अर्थात् प्रशंसा का पात्र हूँ। अहं कृतकृत्यः=(यज्ञ, तप, दान भगवन्नाम स्मरण आदि का फल प्राप्त करके) मैं अनुष्ठान करने योग्य कर्म को कर चुका। अहं पुण्यः=(आपका दर्शन रूप सुकृत फल प्राप्त करके) मैं सुकृती हो चुका। मे=मेरा। जन्म=शरीर धारण। अर्थात् उच्चतम ब्रह्म के पुत्र होने का कार्य। सफलम्=फल युक्त हो गया। अर्थात् साक्षात् भगवद्दर्शन रूप फल, फल गया। च=और। मे=मेरा। जीवितम्=प्राण धारण करना। (भी) सफलम्=सफल हो गया॥ ७६॥

विशेष :--भगवान श्रीरामजी के साक्षात् दर्शन रूप स्वाभीष्ट को प्राप्त करके नारदजी अपने को तथा अपने साधनों की प्रशंसा कर रहे हैं। पुरुषोत्तम्–यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। तस्माल्लोके वेदे च प्रथितोऽहं पुरुषोत्तमः॥ आप माया, जीव से परे लोक वेद प्रसिद्ध पुरुषोत्तम हैं। मुमुक्षुजनों को आपके साक्षात्कार पर्यन्त अवश्य कर्तव्य जो तप, नामजप, स्तुति आदि हैं वे आज आपके दर्शन से सफल हैं। आपके दर्शन के बाद अब मेरे लिये कुछ भी शेष नहीं हैं। अतः मैं महान पुण्यशाली हूँ मन, वचन, कर्म द्वारा होने वाले समस्त साधन सिद्ध हो गये हैं॥ ७६॥

अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं तपः।
अद्य मे सफलो यज्ञस्त्वत्पादाम्भोजदर्शनात्॥ ८०॥

अद्य=आज। मे=मेरा। ज्ञानम्=ज्ञान। सफलम्=सफल है। अद्य में तपः=आज मेरी तपश्चर्या। सफलम=सफल है। अद्य मे=आज मेरा। यज्ञः=जपयज्ञ। सफलम्=सफल है॥ ८०॥

विशेष :-- पादौ, अम्भोज इव (अम्भसि=जले जातः) कमल इव पादाम्भोजः तस्य दर्शनात्। तव पादाम्भोजदर्शनात्=त्वत्पादाम्भोजदर्शनात्। ज्ञानादिक की सफलता में भगवच्चरणकमलदर्शन हेतु है। नारदजी अपने ज्ञान को सफल कह रहे हैं वह कौन सा ज्ञान है। गीता में उस ज्ञान का वर्णन इस प्रकार है। यथा--"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा॥ १॥ अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥२॥ एतद्योनीनि भूतानि

सर्वाणीत्युपधारय । अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ३ ॥ मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥४॥ जिस परमात्मा में यह दृश्यमान ब्रह्माण्ड सूत में मणिगण के समान गुंथा है जिसको श्रुतियाँ पृथ्वी अन्तरिक्षादि से भी बड़ा बतलाती हैं। श्रुतौ यथा—"ज्यायान् पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः" उसी तत्त्व को उपासना के लिये अणुरूप भी कहा है। श्रुतौ यथा "एष म आत्माऽन्तर्हृदये" अणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा" "सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः" इत्यादि अनेक विशेषण विशिष्ट श्रीरामजी के पादकमल का दर्शन नारदजी को प्राप्त है, अब कोई प्राप्तव्य शेष नहीं है। भागवते यथा—तस्मिंस्तुष्टे किम प्राप्यं जगतामीश्वरे। इसलिये श्रीनारदजी अपने साधनों की सराहना कर रहे हैं। यद्यपि ये साधन तथा साधक, साध्य के ही अधीन हैं। भागवते यथा "यथा दारुमयी योषित् नृत्यते कुहकेच्छया। एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥१॥ तथापि आंशिक सफलता इन साधनों की भी है ॥ ८० ॥

> अद्य मे सफलं सर्वं त्वन्नामस्मरणं तथा।
> त्वत्पादांभोरुहद्वन्द्वे सद्भक्तिं देहि राघव ॥ ८१ ॥

राघव=हे रामजी। अद्य=आज। मे=मेरा। सर्वम्=श्रद्धा, धर्मपालन, यम, नियम, गुरुजन सेवा, तीर्थाटन, आदि। सफलम्=सफल है। तथा=और। त्वन्नाम स्मरणम=आपके मङ्गलमय नाम का कीर्तन। सफल है। त्वत्पादाम्भोरुहद्वन्द्वे=अपने युगलपदारविन्द में। सद्भक्तिम्=अव्यभिचरित अनुराग को। देहि=दीजिये ॥ ८१ ॥

विशेष :—श्रीमद्भागवत में साधनों द्वारा भगवत कथामृतपान की प्राप्ति कही गई है। उसका फल भगवच्चरणानुराग है। भगवदनुराग के अंतर ही भगवच्चरण-कमलदल दर्शन की पिपासा होती है, इसके अनन्तर ही भगवद्दर्शन सम्भव है। यही जीव मात्र का लक्ष्य है। यथा—

सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाऽऽध्यात्मिक योगनिष्ठया। योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवः कथया पुण्यया च ॥१॥ अथेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया तत्सम्मतानामपरिग्रहेण च। विविक्तरुच्या परितोष आत्मन् विना हरेर्गुण पीयूषपानात् ॥ २ ॥ अहिंसया पारमहंस्य चर्यया स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यमीधुना। यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ ३ ॥ यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकीपुमानाचार्यवान् ज्ञानविज्ञानरंहसा। दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥ ४ ॥

ब्रह्म में नैष्ठिकी बुद्धि होने पर ही यह जीव कृतार्थ होता है। यह नैष्ठिक ज्ञान भगवत्कैंकर्य परायणरूप है। अतः श्रीनारद जी ने "सद्भक्ति देहि" की ही याचना की।

इस भक्ति के आठ अङ्ग श्रीमद्भागवत में कहे गये हैं। यथा—श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥ १॥ अर्चन पादसंवाहनादिरूप अव्यभिचरित नैसर्गिक भक्ति को श्रीनारद ने माँगा। भक्ति के स्वरूप तथा महिमा की एक झाँकी पुनः करें। श्रीमद्भागवते यथा—

भक्त्याहमेकयाग्राह्यः श्रद्धयात्माप्रियः सताम्। भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥१॥ धर्मः सत्यादयोपेतो विद्या वा तपसान्विता। भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि।२। कथंविना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना। विनानन्दाश्रुकलया शुद्धयेद् भक्त्या विनाशयः।३। वाग् गद्गदा द्रवते यस्यचित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च। विलज्ज उद्गायाति नृत्यते च मद् भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥४॥ ८१॥

ततः परमसंप्रीतो रामः प्राह स नारदम्॥ ८१½॥

ततः=इसके अनन्तर। परमसंप्रीतः=अत्यन्त प्रसन्न। स रामः=जगत्प्रसिद्ध श्रीरामजी। नारदम्=श्रीनारदजी को। प्राह=कहा।

विशेष—ततः=आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। मेरा अभीष्ट यही है। इस प्रकार अन्य याचना न होने के कारण केवल स्वचरणारविन्द विषयक अनुराग की ही अभ्यर्थना से स्वयं अनुरागी तथा विज्ञ होने के कारण श्रीरामजी के अतीव हर्ष को कह रहे हैं। परमसंप्रीतः=अत्यन्त संतुष्ट होकर। नारदं प्राह=श्रीनारदजी से कहा॥८१½॥

श्रीरामचन्द्र उवाच—मुनिवर्य महाभागमुनेत्विष्टं ददामि ते।
यत्त्वया चेप्सितं सर्वं मनसा तद् भविष्यति॥८२॥

श्रीरामजी ने कहा—

मुनिवर्य महाभाग मुने=हे मुनिश्रेष्ठ, महान् (श्रेष्ठ, पूज्य) को प्राप्त करने वाले (महा भाग)। मुने=हे मननशील। ते=तुम्हारे लिये। तु=निश्चय। इष्टम्=अभिलाषा का विषय, कल्याण सम्पादक। ददामि=दे रहा हूँ। यत=जो। त्वया=आपने (माँगा)। मनसा च=मन के द्वारा। (जिसे मुँह से नहीं माँगा)। ईप्सितम्=प्राप्त करने के लिये इष्ट (है)। तद्=वह। सर्वम्=सम्पूर्ण। भविष्यति=हो जायेगा॥ ८२॥

विशेष—मुनिवर्य आदि तीन सम्बोधनों के द्वारा श्रीरामजी की परमप्रसन्नता, तथा श्री नारदजी के प्रति अत्यादर, एवं अत्यधिक स्नेह सूचित हो रहा है। महाभाग=महान्तं श्रेष्ठं पूज्यम्, उत्कृटं वा भजति वृणोति इति महाभाग। मनसा च=केवल च शब्द से आपके सदृश अन्य अथवा आपसे सम्बन्धित जो कोई भी हों, उन जनों के भी मनके द्वारा अभीष्ट (वाञ्छित विषय) की पूर्ति हुआ करे। भविष्यत्कालिक प्रयोग से व्यक्त हुआ। जब मनसोद्दिष्ट की पूर्ति मेरे (श्रीरामज के) द्वारा होती है तब आपने